भीतर

3 और भी गुल खिला सकता था क्वात्रोची

चौथी दुनिया

दिल्ली रविवार 17 मई 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

4 बोफोर्स कंपनी ने भी सरकार को अंधेरे में रखा

5 प्रियंका कांग्रेस का आख़िरी दांव हैं

7 पहले मुख्यमंत्री तय होंगे, फिर प्रधानमंत्री

9 मुसलमानों के मन में क्या चल रहा है

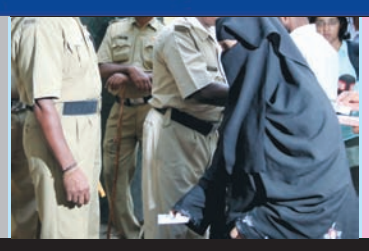

मूल्य 20 रुपये

बोफोर्स घोटाले की अनकही कहानी

पहली बार खुला घोटालेबाजों का कच्चा चिट्ठा

खुल गए लीपापोती के सूत्र, सीबीआई सुस्त

चुनाव के दौरान खुलासे के पीछे हैं गहरे राज़

संतोष भारतीय

अचानक बोफोर्स की कहानी फिर हिंदुस्तान की राजनीति में बहस का विषय बन गई. पंद्रहवीं लोकसभा के चुनाव हो रहे हैं, वोट डाले जा रहे हैं, दो दौर के मतदान हो चुके थे, अचानक एक अख़बार में ख़बर छपी कि इंटरपोल ने क्वात्रोची के ख़िलाफ़, सीबीआई की सलाह पर रेड कार्नर नोटिस वापस ले लिया है. यह ख़बर उन लोगों ने लीक नहीं की जो कांग्रेस के राजनीतिक विरोधी हैं, बल्कि उन्होंने लीक की जो कांग्रेस के ही बनाए हुए हैं. सवाल खड़ा होता है कि क्यों यह ख़बर चुनाव के अंतिम दिनों में सामने आई या उसे रोके रखने की कोशिश नहीं की गई? क्या इसे सोनिया गांधी या प्रधानमंत्री कार्यालय के इशारे पर लीक किया गया या इस फैसले को लेने के पीछे भी इन दोनों का हाथ था? किसने सीबीआई से कहा कि वह इंटरपोल को रेड कार्नर नोटिस वापस लेने के लिए कहे? क्वात्रोची तो वैसे ही सीबीआई के हाथ नहीं आ रहा था और न वह सरकार की प्राथमिकता पर था, तब क्यों बैठे बिठाए बोफोर्स दलाली के केस को खोल दिया गया? कानून मंत्री हंसराज भारद्वाज, सालिसिटर जनरल मिलन बनर्जी इस सारी कहानी के मुख्य पात्र हैं जिन्होंने अपनी ओर से पहल की और सीबीआई को राय दी कि, वह रेड कार्नर नोटिस वापस लेने के लिए इंटरपोल को कहे. राजनीतिक क्षेत्रों में अंदाज़ा लगाया जाने लगा है कि कांग्रेस अपनी स्थिति को लेकर थोड़ी आशंकित है, जबकि बात इससे उलटी है. कानून मंत्री हंसराज भारद्वाज गांधी परिवार के ख़ास हैं. वह छह बार राज्यसभा में आए, लगातार कांग्रेस सरकार में मंत्री रहे और उन्होंने एक बार भी चुनाव नहीं लड़ा. उन्हें लगा कि जुआ क्यों खेलें, उन्होंने मिलन बनर्जी से बातचीत की. ज़ाहिर है, सालिसिटर जनरल और कानून मंत्री बात करेंगे ही, जब कानून मंत्री की राय होगी तो वह सालिसिटर जनरल के लिए दिशा-निर्देश का काम करेगी. कब सीबीआई ने इंटरपोल को लिखा और कब नोटिस वापस हुआ, इस पर कई राय हैं. लेकिन ख़बर सामने आने का वक्त ऐसा रहा जो कांग्रेस को परेशानी में डाल गया. अब इस केस पर सितंबर में सुनवाई होगी और अदालत फैसला लेगी कि करना क्या है, पर इंटरपोल अदालत के फैसले से नहीं, सीबीआई के फैसले से प्रभावित होती है. आइए, आपको इस पूरे कांड से परिचित कराते हैं जिसने पूरे भारत की राजनीति में भूचाल ला दिया था.

पिछले सालों में भारत में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सबसे मशहूर रहे कांड का नाम बोफोर्स कांड है. इस कांड ने राजीव गांधी सरकार को दोबारा सत्ता में नहीं आने दिया. वी. पी. सिंह की सरकार इस केस को जल्दी नहीं सुलझा पाई और लोगों को लगा कि उन्होंने चुनाव में बोफोर्स का नाम केवल जीतने के लिए लिया था. कांग्रेस ने इस स्थिति का फायदा उठाया और देश से कहा बोफोर्स कुछ था ही नहीं. यदि होता तो वी. पी. की सिंह सरकार उसे जनता के समक्ष अवश्य लाती. सी. बी. आई. की फाइलों में इस केस का नंबर है–आर.सी. 1 (ए)/90 ए.सी.यू.–आई.वी.एस.पी.ई., सी.बी.आई., नई दिल्ली. सी.बी.आई. ने 22.01.1990 को इस केस को दर्ज किया था, ताकि वह इसकी जांच कर सच्चाई का पता लगा सके.

इस केस को दर्ज करने के लिए सी.बी.आई. के आधार सूत्र थे– कुछ तथ्य परिस्थितिजन्य साक्ष्य, मीडिया रिपोर्ट्स, स्वीडिश नेशनल ब्यूरो के ऑडिट रिपोर्ट, ज्वाइंट पार्लियामेंटरी कमेटी की रिपोर्ट में आए कुछ तथ्य और कंट्रोलर एंड ऑडिटर जनरल ऑफ इंडिया की रिपोर्ट. यद्यपि 1987 के बाद से ही देश में बोफोर्स सौदे को लेकर काफी बहसें और शंकाएं खड़ीं कर दी गईं थीं और इस सवाल को राजनीतिक सवाल भी बना दिया गया था. मामला इतना गंभीर बन गया था कि संसद को संयुक्त संसदीय समिति बनानी पड़ी. लेकिन सरकार ने अपनी जांच एजेंसी को इसकी जांच नहीं सौंपी. जब 1989 में सरकार बदली उसके बाद यह निर्णय हुआ कि इसकी जांच कराई जाए, तभी सी.बी.आई. ने इसकी एफ.आई.आर. लिखी.

सी.बी.आई. ने जब उपरोक्त रिपोर्ट का अध्ययन किया, तब उसे लगा कि सन 1982 से 1987 के बीच कुछ पब्लिक सर्वेंट्स ने (हिंदी में इन्हें लोक सेवक कहते हैं, पर हम पब्लिक सर्वेंट्स लिखेंगे) कुछ खास असरदार व्यक्तियों के साथ मिलकर आपराधिक षड्यंत्र किया और रिश्वत लेने और देने का अपराध किया है. ये व्यक्ति देश व विदेश से संबंध रखते थे. सी.बी.आई. ने यह भी नतीजा निकाला कि ये सारे लोग धोखाधड़ी, चीटिंग और फोर्जरी के भी अपराधी हैं. यह सब उसी कांट्रैक्ट के सिलसिले में हुआ, जो 24.3.1986 को भारत सरकार और स्वीडन की कंपनी ए.बी. बोफोर्स के बीच संपन्न हुआ था.

एक निश्चित प्रतिशत धनराशि बोफोर्स कंपनी द्वारा रहस्यमय ढंग से स्विट्जरलैंड के पब्लिक बैंक अकाउंट्स में जमा कराई गई और भारत सरकार के पब्लिक सर्वेंट्स को और उनके नामांकित लोगों को दी गई, जबकि भारत सरकार ने सभी आवेदनकर्ताओं को सूचित कर दिया था कि इस सौदे में कोई बिचौलिया नहीं रहेगा.

भारत सरकार अच्छी तोपें खरीदना चाहती थी, ताकि वह सीमाओं को और सुरक्षित कर सके. उसने जब इसके लिए अच्छी तकनीक की तलाश की तो तीन देश सामने आए – फ्रांस, आस्ट्रिया, और स्वीडन. इसमें भी अंत में फ्रांस और स्वीडन ही रह गए क्योंकि स्वीडन और आस्ट्रिया ने मिलकर एक ग्रुप-सा बना लिया था. स्वीडन की कंपनी ने आस्ट्रिया की कंपनी को आश्वासन दिया था कि तोप वे देंगे और गोला-बारूद आस्ट्रिया देगा. आस्ट्रिया इस आश्वासन के बाद पीछे हट गया और स्वीडन की बोफोर्स कंपनी फ्रांस की सोफमा कंपनी के मुकाबले में बची रह गई.

जांच में सी.बी.आई. के सामने यह बात आई कि ए.बी.बोफोर्स कंपनी ने यह सौदा भारत में कुछ पब्लिक सर्वेंट्स के साथ मिलकर आपराधिक षड्यंत्र करके हासिल किया है, ये सभी निर्णय लेने की प्रक्रिया के जिम्मेदार व्यक्ति थे जबकि इन्हें मालूम था कि ये जिस गन सिस्टम (तोप) के पक्ष में निर्णय दे रहे हैं, वह दूसरी गन सिस्टम के मुकाबले तकनीकी रूप से कमज़ोर है.

फरवरी 1990 में भारत सरकार ने इस कांड की संपूर्ण जांच का अनुरोध स्विस अधिकारियों से किया. इसके लिए भारत सरकार ने स्विस अधिकारियों को लेटर रोगेटरी भेजा, जिसे दिल्ली की विशेष अदालत ने जारी किया. इसमें यह मांग की गई कि स्विस अधिकारी यह बताएं कि ए.बी.बोफोर्स ने ए.ई.सर्विसेज को कब और कितना पैसा दिया है.

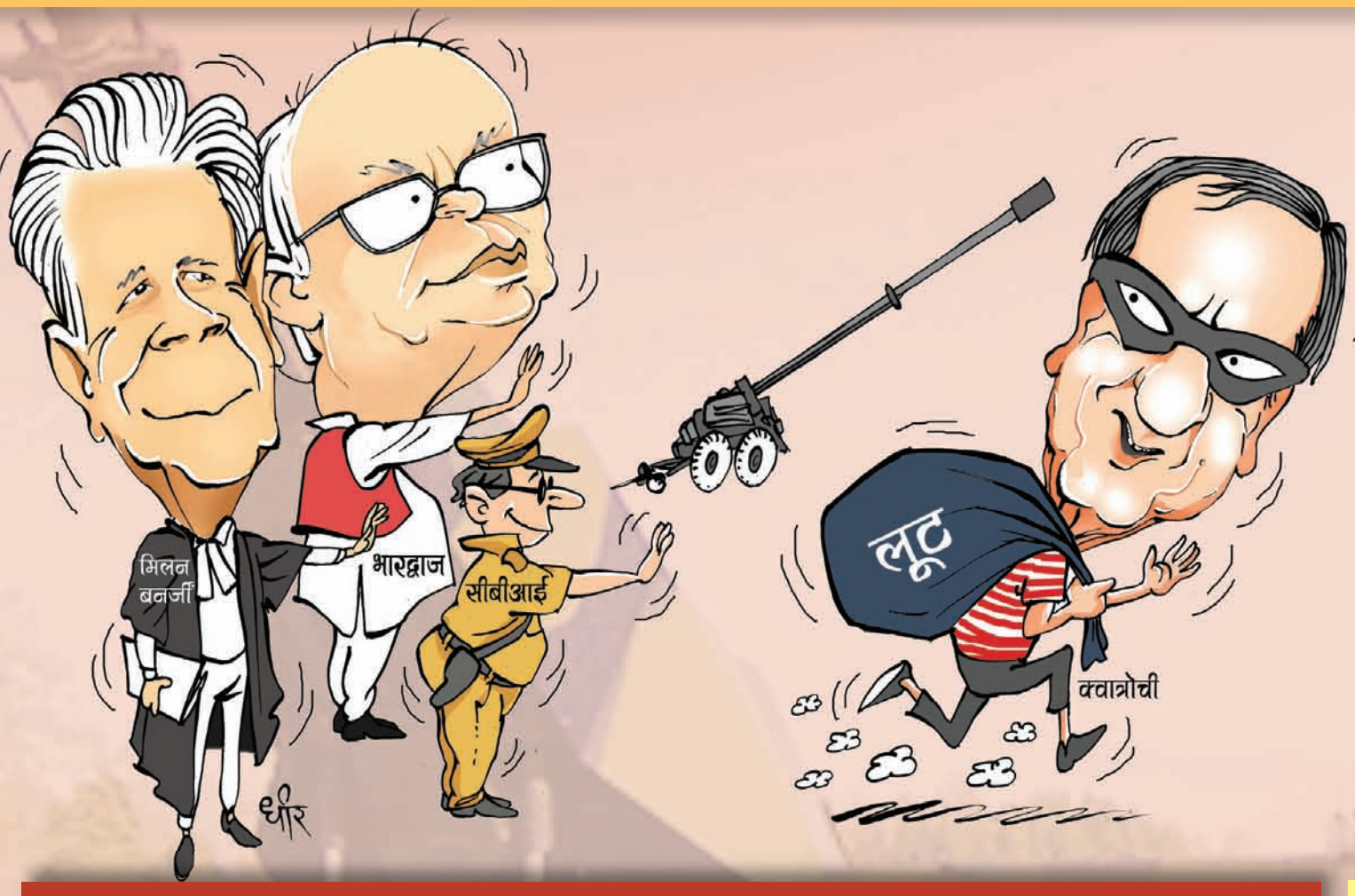

जांच में यह भी पता चला कि ए.बी. बोफोर्स ने ओट्टावियो क्वात्रोची के अलावा कुछ और लोगों के साथ भी सांठ-गांठ कर ए.ई.सर्विसेज को अपना एक एजेंट बना दिया है, जिसका एग्रीमेंट उसने 15.11.1985 को किया ताकि उसे कांट्रैक्ट मिल सके. जबकि भारत सरकार की नीति थी कि कोई बिचौलिया नहीं रहेगा. क्वात्रोची इस एग्रीमेंट को करने वाले मुख्य व्यक्ति के रूप में सामने आए. ए.बी. बोफोर्स ने उन्हें 73,43,941 अमरीकी डॉलर दिए, जो उनके उस अमरीकी अकाउंट में जमा किए गए जो केवल इसी काम के लिए खोला गया था. जमा कराने की तारीख 8.9.1986 थी.

स्विस अधिकारियों ने लेटर रोगेटरी के एक हिस्से पर कार्रवाई की और भारत सरकार को आधिकारिक जानकारी दी जिसके मुताबिक ए.ई.सर्विसेज के अकाउंट में जो रकम बोफोर्स कंपनी ने जमा कराई थी, वह फिर आगे जाकर ट्रांसफर की गई. आठ दिन के अंतराल के बाद इस रकम में से 71,23,900 अमरीकी डॉलर दो किस्तों में स्विट्जरलैंड के एक बैंक में ट्रांसफर किए गए. तारीख 16.9.1986 को 7,00,000 डॉलर और तारीख 29.9.1986 को 1,23,900 डॉलर ट्रांसफर हुए. यह सारी रकम जेनेवा में यूनियन बैंक ऑफ स्विट्जरलैंड में खोले गए मै. कोलंबर इन्वैस्टमेंट लिमि. इंक नाम की कंपनी के खाते में जमा हुई. इस अकाउंट को ऑपरेट और कंट्रोल करने का अधिकार ओट्टावियो क्वात्रोची और उसकी पत्नी को था.

जब ये अकाउंट खोले गए तब ओट्टावियो क्वात्रोची दिल्ली में काम करता था और इटालियन कंपनी स्नैम प्रोगेत्ती के रीजनल डायरेक्टर के पद पर तैनात था. वह दिल्ली में र हता था, पर उसने खाते खोलते हुए जो पता लिखाया वह पता कहीं था ही नहीं.

इस रकम को ओट्टावियो क्वात्रोची के निर्देश पर फिर ट्रांसफर किया गया. मै. वेटेल्सेन ओवरसीज, एस.ए. ऑफ पनामा के अकाउंट में इसी बैंक में यह रकम ट्रांसफर हुई. ट्रांसफर करने की तारीख थी 25.7.1998. यह कंपनी पनामा में 6.8.1987 को बनाई गई और 7.8.1988 को भंग कर दी गई. दरअसल यह कंपनी सिर्फ इसलिए ही बनाई गई थी कि बैंक अकाउंट के जरिए धनराशि के अवैध लेन-देन के लिए इसे इस्तेमाल किया जा सके. इस खाते को भी क्वात्रोची और उनकी पत्नी व्यक्तिगत रूप से ऑपरेट किया करते थे.

इस साजिश में शामिल लोगों को किसी प्रकार

(शेष पृष्ठ 2 पर)

प्रधानमंत्री ने क्यों किया सीबीआई का बचाव

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने इटली के व्यापारी ओट्टावियो क्वात्रोची का नाम इंटरपोल की रेड कॉर्नर नोटिस सूची से हटाने के सीबीआई के फैसले का बचाव किया है. इटालियन बिजनेसमैन ओट्टावियो क्वात्रोची बोफोर्स घोटाले का मुख्य अभियुक्त है. प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा-

“यह केस भारत सरकार के लिए शर्मिंदगी का कारण बन गया है. भारतीय वैधानिक व्यवस्था की छवि के लिए अच्छा नहीं है कि हम लोगों को परेशान करें, जबकि पूरी दुनिया कह रही है कि क्वात्रोची के ख़िलाफ़ कोई मामला ही नहीं है. हमने क्वात्रोची को मलेशिया से लाने की कोशिश की है, अर्जेंटीना से प्रत्यर्पण कराने की कोशिश की, पर हम विफल साबित हुए. यहां की अदालतों ने कहा है कि उसके ख़िलाफ़ कोई पुख्ता मामला नहीं है. इसके बाद इंटरपोल ने भारत सरकार से पूछा था कि क्वात्रोची को हम रेड कार्नर नोटिस के दायरे में क्यों लाना चाहते हैं. इसी वजह से मामला विधि मंत्रालय के पास भेजा गया, जिसने अटार्नी जनरल से उनकी राय जानना चाहा. अटार्नी जनरल ने कहा कि रेड कार्नर नोटिस बनाए रखने की कोई वजह नहीं है. हालांकि यह मामला अभी अदालत में लंबित है”

क्या प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने यह बयान देकर सोनिया गांधी और कांग्रेस पार्टी को शर्मिंदा नहीं किया है? क्या भारत की सरकार मलेशिया और अर्जेंटीना के कानून और कोर्ट के फैसले पर चलती है? क्या प्रधानमंत्री यह समझते हैं कि एक अभियुक्त के समर्थन में भारत सरकार के खड़े होने से दुनिया में भारत का नाम रोशन होगा, जबकि भारत की अदालत ने क्लीन चिट नहीं दी है. हम आशा करते हैं कि इन सबूतों को देखने के बाद प्रधानमंत्री अपने बयान को वापस ले लेंगे और सोनिया गांधी, कांग्रेस पार्टी और देश की जनता को शर्मिंदगी से बचा लेंगे.

प्रधानमंत्री जी, सबूत तो हैं

ओट्टावियो क्वात्रोची के ख़िलाफ़ भारत के पास पर्याप्त सबूत हैं. इसके बावजूद, प्रधानमंत्री ने सबूत न होने की बात किस आधार पर मान ली, यह वह जानें. लेकिन *चौथी दुनिया* के पास वे सारे सबूत हैं, जिनके आधार पर भारत दुनिया के सामने सीना तान कर कह सकता है-यह देखो. सरकार ऐसा करती है या नहीं, यह सरकार जाने. हम इन अकाट्य सबूतों को जनता और सर्वोच्च न्यायालय के सामने रख रहे हैं. न सिर्फ सबूत दे रहे हैं, बल्कि किसी भी मंच, जांच एजेंसी, अदालत या संसदीय समिति तक में इसके पक्ष में खड़े होने को भी तैयार हैं. सच को झुठलाने की मज़बूरी राजनीति की हो सकती है, लोकतंत्र के इस चौथे स्तंभ की नहीं. हम आशा करते हैं कि इन सबूतों को देखने के बाद प्रधानमंत्री अपने बयान को वापस ले लेंगे.

दिल्ली के बाबू

दिलीप चेरियन

राह में रुकावटें

नेता भले ही चुनावी राह पर हों, लेकिन नई सड़कों की राह में अड़चनें पैदा हो गई हैं. अनुमान है कि भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (एनएचएआई) को करीब 70000 करोड़ के प्रोजेक्ट रोकने पड़े हैं और अभी चल रहे प्रोजेक्टों के पूरा होने की भी कोई गारंटी नहीं है. पिछले साल एनएचएआई ने 1700 करोड़ के टोल टैक्स कमाने का लक्ष्य तय किया था, लेकिन यह सब मंदी के पहले था. अब तो वह इस आंकड़े को पाने को तरस रही है. उधर एनएचएआई ने केंद्र से उड़ीसा सरकार की शिकायत की है कि वह उसे एक नए राजमार्ग से टोल टैक्स वसूलने नहीं दे रही. ऐसे में एनएचएआई की कमाई और कम रहने की आशंका है. क्या स्थिति चुनाव के बाद सुधरेगी? कह नहीं सकते. हालांकि एनएचएआई के अधिकारियों के लिए इससे भी बड़ी चिंता महत्वपूर्ण प्रोजेक्टों के पूरा न हो पाने की है. एनएचएआई के सदस्य (वित्त) ए दीदार सिंह की मानें तो 2009 तक पूरे होने वाले करीब 60 प्रोजेक्ट तय समय पर पूरे नहीं हो पाएंगे. वजह बोली लगाने वालों की कमी और कार्य प्रक्रिया में देरी है. यहां तक की राजधानी में बन रहा बदरपुर फ्लाईओवर भी अपनी तय समयसीमा (कॉमनवेल्थ खेलों से पहले) तक तैयार नहीं हो पाएगा. इस फ्लाईओवर की ज़मीन को लेकर एनएचएआई और एक दूसरी सरकारी एजेंसी में खींचतान चल रही है. एनएचएआई को इस देरी के लिए भारी भरकम पेनल्टी भी चुकानी पड़ सकती है. अब इसका दोष तो मंदी के मत्थे नहीं चढ़ाया जा सकता.

पॉवर प्ले

चुनाव आयुक्त बनने की होड़ में ऊर्जा सचिव वी.एस.संपत छुपे रूस्तम साबित हुए. उन्होंने महाराष्ट्र के मुख्य सचिव जॉनी जोसेफ, कर्नाटक के मुख्य सचिव सुधाकर राव, पूर्व ऊर्जा सचिव अनिल राजदान और विधि सचिव टी.के.विश्वनाथन को पीछे छोड़ दिया. वह नए मुख्य चुनाव आयुक्त नवीन चावला के साथ काम शुरू भी कर चुके हैं. हालांकि संपत की नियुक्ति से फुसफुसाहट भी तेज़ हो गई है. सूत्र बताते हैं कि उनकी नियुक्ति में आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री वाई राजशेखर रेड्डी, तमिलनाडु के मुख्यमंत्री करुणानिधि और निवर्तमान ऊर्जा मंत्री व आंध्र के राज्यपाल रह चुके सुशील कुमार शिंदे का हाथ है. संपत की नियुक्ति यूपीए अध्यक्ष सोनिया गांधी के आंध्र में करीमनगर दौरे के दो दिनों के अंदर हुआ. इससे यह अनुमान लगाया जा रहा है कि संपत की सिफारिश वाईआरएस रेड्डी ने ही की.

अब संपत के निर्वाचन सदन पहुंचने से ऊर्जा मंत्रालय में उनके उत्तराधिकारी का सवाल उठ खड़ा हुआ है. माना जा रहा है कि मुक़ाबला 1973 के बिहार कैडर के आईएएस अधिकारी यू.एन. पंजियार और उत्तर प्रदेश कैडर के आईएएस अजय शंकर के बीच है.

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

त्रिपाठी का सम्मान!

उपेंद्र त्रिपाठी अपनी कार्यकुशलता और अच्छे काम के लिए मशहूर हैं. उन्हें सबसे अधिक बेंगलुरू महानगर परिवहन निगम को फायदे का सौदा बनाने वाले के रूप में याद किया जाता है. अपने इन कामों के लिए वह काफी सराहे जाते रहे हैं. इतना ही नहीं, जनप्रशासन में श्रेष्ठता के लिए उन्हें प्रधानमंत्री पुरस्कार से भी नवाजा गया. 2008 में उन्हें रॉटरी क्लब ऑफ बेंगलुरू द्वारा श्रेष्ठ नागरिक का सम्मान भी मिला.

आश्चर्यजनक तौर पर इतने अच्छे रिकार्ड के बावजूद उन्हें अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय में संयुक्त सचिव बना दिया गया है. यह एक ऐसा पद है जिस पर जाने को कोई तैयार नहीं था. इस पद के लिए कई आईएएस अधिकारी मना कर चुके थे. अब सरकार ने यह ज़िम्मेदारी उपेंद्र त्रिपाठी को सौंप दी है. यहां सवाल यह उठ खड़ा होता है कि जिस अधिकारी को सरकार ने प्रधानमंत्री पुरस्कार के लायक समझा उसे एक ऐसे मंत्रालय में क्यों भेज दिया गया जो ख़ुद ही अपने पैरों पर खड़ा नहीं हुआ है.

जे एस शर्मा संभालेंगे ट्राई

भारतीय दूरसंचार नियमन प्राधिकरण (ट्राई) के अध्यक्ष को चुनने के लिए महीनों से चल रही खींचतान आख़िरकार ख़त्म हो गई है. ख़बर है कि आंध्र प्रदेश कैडर के 1971 बैच के आईएएस अधिकारी रहे डॉ. जे एस शर्मा को अब ट्राई की कमान सौंप दी जाएगी. यह पद लंबे समय से खाली चल रहा था.

Telecom Regulatory Authority of India

डॉ. शर्मा फिलहाल दूरसंचार विवाद निदान और अपील ट्रिब्यूनल के सदस्य हैं. पहले कहा जा रहा था कि ट्राई का मुखिया चुनने के लिए चार नामों को शार्टलिस्ट किया गया था. लेकिन अब लगता है कि आख़िरी फैसला कर लिया गया है.

गृह मंत्रालय को मिलेगी शशि की सलाह

महाराष्ट्र कैडर के 1976 बैच के आईएएस अधिकारी शशि प्रकाश अब गृह मंत्रालय में बैठेंगे. उन्हें गृह मंत्रालय के तहत अंतरराज्यीय परिषद सचिवालय के सलाहकार के पद पर नियुक्त किया गया है. इससे पहले शशि प्रकाश त्रिपुरा में मुख्य सचिव के पद पर थे.

वैसे शशि प्रकाश गृह मंत्रालय से पहले से ही परिचित हैं. वह इससे पहले संयुक्त सचिव, आंतरिक सुरक्षा की ज़िम्मेदारी निभा चुके हैं. वह 1976 बैच की उत्तरप्रदेश कैडर की वीणा उपाध्याय की जगह लेंगे.

यह अतिरिक्त सचिव के स्तर का पद है और वीणा उपाध्याय 21 जनवरी तक इस पद पर रही थीं.

डॉ. मंज़ूर आलम

भाजपा संविधान को बदलकर राज्य की संस्थाओं को नष्ट करना चाहती है

भारत का संविधान कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका जैसी तीन मज़बूत और स्वतंत्र चीज़ों पर आधारित है. इसमें कुशल और निष्पक्ष राज्य की संरचना सुनिश्चित की गई है. लेकिन हमारे देश में कुछ ऐसे तत्व हैं, जो संविधान को ही नष्ट करने पर तुले हैं. ऐसा ही मामला तब उजागर हुआ जब गुजरात दंगों को लेकर मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी, उनके कई मंत्रियों और अधिकारियों के ख़िलाफ़ शिकायत की जांच का सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिया.

कोर्ट के आदेश के अगले दिन ही मोदी ने एक जनसभा कर आदेश को कांग्रेस की साज़िश करार दे दिया. भारतीय जनता पार्टी ने सुप्रीम कोर्ट की विश्वसनीयता पर सवाल खड़ा कर संविधान की गरिमा को चोट पहुंचाया है जो हम भारतीयों के लिए गंभीर चिंता का विषय है.भाजपा ने सुप्रीम कोर्ट की वैध कार्रवाई को राजनीतिक साज़िश बताकर न केवल अदालत की अवमानना की है, बल्कि यह तो संविधान को ही नष्ट करने की कोशिश है.

गुजरात में भाजपा यह प्रचार कर रही है कि सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र सरकार के कहने पर ही यह जांच का आदेश दिया है, जो पूरी तरह बेबुनियाद है. साफ तौर पर यह अदालत की अवमानना का सवाल है और इसके लिए मुकदमा चलाया जाना चाहिए. नरेंद्र मोदी और पूरा संघ परिवार यह कह कर इस पर पर्दा नहीं डाल सकते कि जांच के जरिए उन्हें बदनाम करने का षड्यंत्र रचा जा रहा है. इसी तरह वह अपने विकास कार्यों का ढिंढोरा पीटकर भी अपने ऊपर लगे दाग को धो नहीं सकते. उनका दाग तभी धुलेगा जब उन्हें न्यायिक प्रक्रिया द्वारा पाक-साफ करार दिया जाए. लेकिन जनाब जांच में सहयोग करने के बजाय सुप्रीम कोर्ट के आदेश में ही राजनीतिक साज़िश देख रहे हैं.

आख़िर भाजपा और पूरा संघ परिवार क्यों संविधान को नष्ट करना चाहता है? ऐसा इसलिए, क्योंकि वे भारतीय संविधान में ही विश्वास नहीं करते हैं. वे न्यायपालिका को इसलिए भी पलट देना चाहते हैं, क्योंकि उनका कानून के शासन में कभी विश्वास रहा ही नहीं. ऐसी सोच रखने वाली पार्टी को आख़िर देश की सत्ता क्यों सौंपी जाए जो संविधान की पवित्रता को नष्ट कर अपने मुताबिक उसका रूप तय करना चाहती हो? ऐसा ही एक विवाद तब पैदा हुआ जब सीबीआई के द्वारा इटली के व्यापारी ओट्टावियो क्वात्रोची को क्लीन चिट दे दी गई. यहां भी भाजपा यह बताने की कोशिश कर रही है कि सीबीआई तो यूपीए सरकार के दबाव में काम कर रही है. फिर वही बात, एक ग़ैरराजनीतिक संस्था को राजनीति से परिपूर्ण कह कर बदनाम किया जा रहा है. ऐसी बात होती और सीबीआई अगर यूपीए सरकार से पूछती तो वह ज़रूर कहती कि चुनाव के बाद इस मुद्दे को उठाया जाए, क्योंकि इससे भाजपा को राजनीतिक लाभ हो सकता है. इससे तो साफ हो गया कि सीबीआई किसी के दवाब में काम नहीं कर रही है. उसका काम करने का अपना एक तरीका है. उसे इससे क्या मतलब कि किसके चुनाव पर असर पड़ेगा, लेकिन भाजपा जैसी संकीर्ण मानसिकता वाली पार्टी के लिए यह समझना आवश्यक है कि वह संविधान के साथ विश्वासघात करेगी तो जनता उसे माफ नहीं करेगी.

भाजपा वादा करती है कि अगर वह सत्ता में आएगी तो क्वात्रोची मामले पर सीबीआई के फैसले की जांच दोबारा कराएगी. अगर वह सचमुच सत्ता में आती है तो जांच के नाम पर ईमानदार अफ़सरों के उत्पीड़न का लंबा कुचक्र चलाकर सीबीआई पर दबाव डालेगी कि वह भाजपा नेताओं पर से भ्रष्टाचार, तोड़-फोड़ और दंगे कराने के आरोप हटा ले.

(लेखक इंडियन एसोसिएशन ऑफ़ मुस्लिम सोशल साइंटिस्ट के अध्यक्ष हैं.)

बोफोर्स घोटाले की अनकही कहानी

(पृष्ठ 1 का शेष)

का डर नहीं था, क्योंकि जब स्विस अधिकारी लेटर रोगेटरी पर काम कर रहे थे, उसी समय 2,00,000 अमरीकी डॉलर फिर से वेटेल्सेन ओवरसीज, एस.ए. अकाउंट से (जो यू.बी.एस. जेनेवा में है) निकाल कर इंटर इन्वेस्टमेंट डेवलेपमेंट कंपनी के अकाउंट में एन्सबाशेर लिमि. के पक्ष में सेंट पीटर पोर्ट गुएंरसे में ट्रांसफर किए गए. ट्रांसफर की तारीख थी- 21.5.1990. इसके बाद किन अकाउंटों में यह पैसा किन देशों में गया इसकी जांच अभी जारी है, क्योंकि जांचकर्ताओं का अनुमान है कि यह कई देशों में ट्रांसफर किया गया होगा.

ओट्टावियो क्वात्रोची इटालियन पासपोर्ट पर भारत में 1967 से रह रहा था. उसने अचानक जुलाई 1993 में भारत छोड़ दिया. ऐसा उसने तब किया जब उसका नाम खुला कि वह स्विस कोर्ट में उन अपील करने वालों में से एक है, जो चाहते थे कि लेटर रोगेटरी पर कार्रवाई रुक जाए और स्विस अधिकारी जांच का काम बंद कर दें. जांच में यह बात स्पष्ट हो गई कि ओट्टावियो क्वात्रोची उस दलाली में हिस्सेदार है, जिसका हिस्सा उसे बोफोर्स तोप सौदे के बाद मिला. उसने इसका इस्तेमाल भारत के उच्च पदस्थ सिविल सर्वेंट्स और अपने लिए किया. पर मजेदार बात यह है कि सी.बी.आई. को ओट्टावियो क्वात्रोची का पता कैसे चला कि वह बोफोर्स तोप सौदे में मुख्य भूमिका निभा चुका है, और ए.ई.सर्विसेज नाम की कंपनी का मालिक भी वही है और इसके नाम से खुले बैंक अकाउंट को भी वही ऑपरेट करता है.

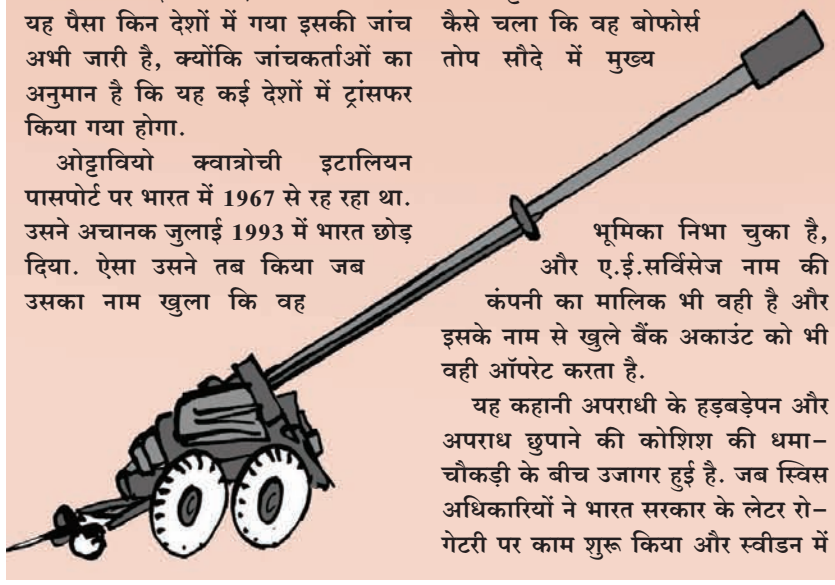

यह कहानी अपराधी के हड़बड़ेपन और अपराध छुपाने की कोशिश की धमा-चौकड़ी के बीच उजागर हुई है. जब स्विस अधिकारियों ने भारत सरकार के लेटर रोगेटरी पर काम शुरू किया और स्वीडन में नेशनल ऑडिट ब्यूरो ने अलग जांच शुरू की तब बोफोर्स कंपनी से प्राप्त धन को नियंत्रित करने वाले सात खाताधारकों को लगा कि कहीं उनका नाम न खुल जाए, उन्होंने स्विस अदालतों में अपील दायर की कि यह जांच रोक दी जाए. विभिन्न अदालतों से होती हुई अपील स्विस सुप्रीम कोर्ट में पहुंची. मजे की बात है कि सी.बी.आई. को इस समय तक पता नहीं चल पाया था कि ये सात खाताधारक कौन हैं. इतना ही नहीं, सी.बी.आई. को यह भी नहीं पता चल पाया कि ए.ई. सर्विसेज का खाता कौन ऑपरेट कर रहा है.

जनवरी 1997 में सी.बी.आई. को स्विस अधिकारियों ने दस्तावेज सौंपे. इन दस्तावेजों के अध्ययन से पहली बार पता चला कि ए.ई.सर्विसेज के अकाउंट का मुख्य लाभार्थी और ऑपरेटर ओट्टावियो क्वात्रोची और उसकी पत्नी मारिया क्वात्रोची हैं. यह भी पता चला कि वह इस सौदे को कराने में बोफोर्स की ओर से मुख्य एजेंट या बिचौलिया था, जिसने भारतीय राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों पर दबाव डाला और सौदा बोफोर्स के पक्ष में कराया. इस अकाउंट से उसने पैसे कहां, कैसे, किन तारीख़ों में और किन अकाउंटों में ट्रांसफर किए यह एक अलग कहानी है.

जब स्विस सुप्रीम कोर्ट ने इन सातों की अपील खारिज कर दी तब पहली बार सी.बी.आई. को जांच अधिकारी ने सूचित किया कि सात अपीलकर्ताओं में ओट्टावियो क्वात्रोची का नाम शामिल है. जिस दिन सी.बी.आई. को क्वात्रोची के नाम पता चला उस दिन तारीख थी 23.7.1993, लेकिन इसके बाद भी सी.बी.आई. को सुप्रीम कोर्ट की कार्रवाई के कागजात नहीं मिले.

यह भी आश्चर्य है कि कागजात क्यों नहीं मिले. उन दिनों प्रधानमंत्री नरसिंह राव थे. यह भी जांच का विषय है कि क्या सी.बी.आई. ने कोशिश नहीं की, या उन्हें कोशिश करने नहीं दी गई. यह भी संयोग ही कहा जाएगा कि जब नरसिंह राव की सरकार का पतन हो गया और देवगौड़ा की सरकार बनी तभी सी.बी.आई. को स्विस सुप्रीम कोर्ट की कार्रवाई मिल पाई.

जनवरी 1997 में सी.बी.आई. को स्विस अधिकारियों ने दस्तावेज सौंपे. इन दस्तावेजों के अध्ययन से पहली बार पता चला कि ए.ई.सर्विसेज के अकाउंट का मुख्य लाभार्थी और ऑपरेटर ओट्टावियो क्वात्रोची और उसकी पत्नी मारिया क्वात्रोची हैं. यह भी पता चला कि वह इस सौदे को कराने में बोफोर्स की ओर से मुख्य एजेंट या बिचौलिया था, जिसने भारतीय राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों पर दबाव डाला और सौदा बोफोर्स के पक्ष में कराया. इस अकाउंट से उसने पैसे कहां, कैसे, किन तारीख़ों में और किन अकाउंटों में ट्रांसफर किए यह एक अलग कहानी है. इतना ही नहीं, उसके भारत के सर्वोच्च राजनीतिक ताकतों और सर्वोच्च नौकरशाहों से कैसे संबंध थे और उन पर कैसा दबाव था, यह भी रहस्यमयी दास्तान है.

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि. न. 45843/86

वर्ष 23 अंक 9, 17 मई 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के - 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के -2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

editor.chauthiduniya@gmail.com

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

और भी गुल खिला सकता था क्वात्रोची

जिन दिनों राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे, उन दिनों अख़बारों में ओट्टावियो क्वात्रोची का नाम अक्सर आता था. जो लोग प्रधानमंत्री निवास में जाते थे उन्हें भी क्वात्रोची वहां गाह-बगाहे दिखाई दे जाता था. राजीव गांधी की ससुराल भी इटली थी और क्वात्रोची भी इटली का था, अतः यह संभावना पैदा होती है कि उसने इटली का कोई संपर्क तलाश लिया हो, जिसके कारण राजीव गांधी ने उसे प्रधानमंत्री निवास में आने की छूट दे रखी हो. क्वात्रोची जिस फर्म स्नैम प्रोगेत्ती का रीजनल डायरेक्टर था, उस फर्म को देश की सबसे बड़ी पाइप लाइन-जगदीशपुर हजीरा पाइप लाइन-बिछाने का ठेका भी मिल गया था.

सी.बी.आई. की फाइलों में जो जांच रिपोर्ट है, वह बताती है कि उस समय के प्रधानमंत्री राजीव गांधी के परिवार तथा ओट्टावियो क्वात्रोची के बीच बहुत ही घरेलू, नजदीकी और आत्मीय संबंध थे. वे आपस में जल्दी-जल्दी मिलते थे, ओट्टावियो क्वात्रोची और उनके परिवार का दखल प्रधानमंत्री निवास में था. बेतकल्लुफी और नजदीकी उन तस्वीरों में साफ झलकती है जो इस समय सी.बी.आई के पास हैं. ओट्टावियो क्वात्रोची अपने को बहुत असरदार व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता था. जब तक भारत में रहा, लगातार फोन से महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञों व नौकरशाहों से संपर्क करता रहता था.

ध्यान देने की बात है कि बोफोर्स कंपनी ने कमीशन के नाम पर सेक 50,463,966,00 ए.ई. सर्विसेज को 3.9.1986 को दिए थे. इस सारी रकम को ए.ई. सर्विसेज ने ओट्टावियो क्वात्रोची की कोलबर इन्वेस्टमेंट लिमि. इंक के अकाउंट में, जो जेनेवा स्थित यू.बी.एस.बैंक में था, 16.9.1986 और 29.9.1986 को ट्रांसफर कर दिया. ए.बी. बोफोर्स और भारत सरकार के बीच हुए करार की शर्त के अनुसार भारत सरकार ने सौदे की 20 प्रतिशत अग्रिम राशि सेक 1,682,132,196.80 तारीख़ 2.5.1986 को बोफोर्स कंपनी को दे दी. ए.ई. सर्विसेज ने कमीशन के तौर पर जो रक़म सेक 50,463,966.00 बोफोर्स कंपनी से प्राप्त की, वह उस रक़म का तीन प्रतिशत बनती है जो भारत सरकार ने बोफोर्स कंपनी को अग्रिम राशि के नाते अदा की थी. यह रक़म उस अनुबंध की शर्त के अनुसार थी, जो बोफोर्स और ए.ई. सर्विसेज के बीच 15 नवंबर 1985 को हुआ था.

भारत सरकार और भारत को तोप बेचने की इच्छुक कंपनियों के बीच इस सौदे के बारे में 1984 में बातचीत हुई. नेगोशिएटिंग कमेटी की पहली बैठक 7.6.1984 को हुई. इसके बाद विभिन्न अवसरों पर यह कमेटी 17 बार मिली. सेना की पहली प्राथमिकता उस समय सोफमा तोप थी. पर 17.2.1986 को सेना मुख्यालय ने पहली बार अपनी रुचि बोफोर्स तोप में दिखाई और इसे सोफमा पर प्राथमिकता दी. इसके बाद तो बोफोर्स तोप में अनावश्यक रुचि दिखाई जाने लगी. अचानक नेगोशिएशन की प्रक्रिया तेज हो गई.

17.2.1986 को सेना मुख्यालय ने अपनी रिपोर्ट में बोफोर्स तोप को बाकी सब पर पहला स्थान दिया. इस कमेटी ने रहस्यमय जल्दबाजी की. इसने एक ही दिन 12.3.1986 को मीटिंग कर लैटर ऑफ इंटैंट (आशय पत्र) बोफोर्स कंपनी के पक्ष में जारी करने की सिफारिश करने का फैसला ले लिया. इसी दिन, यानी 12.3.1986 को संयुक्त सचिव (ओ) ने एक नोट बनाया ताकि रक्षा राज्य मंत्री अर्जुन सिंह, रक्षा राज्य मंत्री सुखराम, वित्त मंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह तथा प्रधानमंत्री राजीव गांधी को भेजा जा सके. यह नोट उसी दिन संबंधित अफसरों और मंत्रियों को भेजा गया और उन्होंने उसी दिन उस पर सहमति भी दे दी. इस नोट पर किसने कब हस्ताक्षर किए, वह इस तालिका से स्पष्ट हो जाएगा-

1. सेक्रेटरी डिफेंस (श्री एस.के.भटनागर) 12.3.1986, 2. सेक्रेटरी, डिफेंस प्रोडक्शन और सप्लाई (श्री पी.सी.जैन) 13.3.1986, 3. रक्षा राज्य मंत्री (श्री सुखराम) 13.3.1986, 4. रक्षा राज्य मंत्री (अर्जुन सिंह) 13.3.1986, 5. फाइनेंशियल एडवाइजर (श्री सी.एल.चौधरी) 13.3.1986, 6. सेक्रेटरी एक्सपेंडिचर (श्री गनपथी) 13.3.1986, 7. फाइनेंस सेक्रेटरी (श्री वी.वेंकटरमन) 13.3.1986, 8. वित्त मंत्री (श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह) 13.3.1986, 9. प्रधानमंत्री, जिन्होंने रक्षा मंत्री के नाते हस्ताक्षर किए (श्री राजीव गांधी) 14.3.1986.

यह तालिका बताती है कि संयुक्त सचिव (ओ) ने 12.3.1986 को नोट तैयार किया तथा इसके बाद बहुत ही ज़्यादा रुचि लेकर जल्दबाजी दिखाई गई. यह फाइल छह विभिन्न विभागों के अफसरों के पास भेजी गई. केवल 48 घंटों के भीतर 11 अफसरों व मंत्रियों के संक्षिप्त हस्ताक्षर कराए गए. सवाल उठता है कि इतनी जल्दबाजी की ज़रूरत क्यों थी?

इस जल्दबाजी का जवाब तलाशना चाहें तो वह हमें बोफोर्स कंपनी और ए.ई. सर्विसेज के बीच हुए अनुबंध में लिखी शर्त से मिल जाता है. यह अनुबंध 15.11.1985 को हुआ था. अनुबंध की इस महत्वपूर्ण धारा में लिखा है कि ए.ई. सर्विसेज को कमीशन तभी मिलेगा जब बोफोर्स कंपनी को यह सौदा मार्च 1986 से पहले मिल जाएगा. इस अनुबंध की रोशनी में फाइल की तेजी और कमीशन का संबंध स्पष्ट हो जाता है, जिसे ओट्टावियो क्वात्रोची और अन्य लोगों ने प्राप्त किया.

इससे यह भी पता चलता है कि ओट्टावियो क्वात्रोची का संबंध उन लोगों से भी था, जो इस डिसीजन प्रोसेस में शामिल रहे हैं. आगे की घटनाएं भी कहानी अपने आप बताती हैं. 12 मार्च 1986 के बाद के 48 घंटों में 11 अफसरों और मंत्रियों के हस्ताक्षर फाइल पर कराकर प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने स्वयं अपने हस्ताक्षर 14.3.1986 को किए. 14.3.1986 को ही उन्हें स्वीडन की यात्रा पर जाना था. वह गए भी. उसी दिन स्वीडन पहुंचते ही उन्होंने स्वीडिश प्रधानमंत्री ओलेफ पाल्मे को सूचित किया कि भारत सरकार ने तोपों की ख़रीद का सौदा बोफोर्स कंपनी को देने का निर्णय लिया है.

इस फैसले को लेने के लिए जो कार्रवाई चली, उनके कागजात यह बताते हैं कि फैसला सिर्फ बोफोर्स को लैटर ऑफ इंटैंट (आशय पत्र) जारी करने का था. यह फैसला अपने आप में अस्वाभाविक था, क्योंकि तब तक दो प्रतिद्वंद्वी कंपनियां बोफोर्स और सोफमा बहुत ही कम रियायतें देने की बात कर रही थीं . जल्दी में यह फैसला लिया गया, अन्यथा प्रतिद्वंद्वी कंपनियां कंपटीटिव रेट देतीं. लैटर ऑफ इंटैंट जारी करने के इस फैसले ने सौदा करने की प्रक्रिया का उल्लंघन किया. शायद इसके पीछे नीयत स्वीडन को यह बताना था कि सौदे का फैसला उनके पक्ष में लिया जा चुका है.

इस केस में ओट्टावियो क्वात्रोची के नाम का खुलासा पहली बार 23.6.1993 को हुआ, जब इंटरपोल स्विटजरलैंड ने भारत सरकार को सूचित किया कि जिन सात लोगों ने स्विस सुप्रीम कोर्ट में जांच कार्रवाई रोकने की अपील की थी, वह सुप्रीम कोर्ट ने ख़ारिज कर दी है. इन सात लोगों में एक नाम ओट्टावियो क्वात्रोची का भी है.

इस सूचना के खुलासे के बाद ओट्टावियो क्वात्रोची ने 29.7.1993 को जल्दबाजी में अपनी पत्नी के साथ भारत छोड़ दिया और वह आज तक भारत वापस नहीं आया. सी.बी.आई. ने क्वात्रोची के इस तरह भारत छोड़ने को, जो कि उसके नाम की जानकारी आने के बाद जल्दबाजी में उसने किया तथा उसके द्वारा स्विस सुप्रीम कोर्ट में भारत सरकार द्वारा जारी लैटर रोगेटरी पर अमल रुकवाने की कोशिश को, प्रथम दृष्ट्या आरोपी या इस अपराध में उसका लिप्त होना माना है. भारत सरकार की जांच एजेंसी सी.बी.आई., जो इस सारे मामले की जांच कर रही है, स्विस अधिकारियों से जनवरी 1997 में सारे कागजात प्राप्त कर पाई तथा तभी वह जान पाई कि ए.ई. सर्विसेज के अकाउंट में जमा हुई रक़म का लाभार्थी ओट्टावियो क्वात्रोची है. प्राप्त हुई रक़म की पहली किस्त भी 7.34 मिलियन डॉलर थी. क्वात्रोची को बोफोर्स ने अपना एजेंट ही इसीलिए बनाया था, ताकि वह न केवल सरकार पर दबाव डाल सके बल्कि रिश्वत देकर उसे 1437.72 करोड़ का तोप सौदा दिला सके .

पहले चरण में फ्रांस की सोफमा को पसंद किया गया, पर बाद में अचानक नाटकीय परिवर्तन आ गया. ए.ई. सर्विसेज को कमीशन तभी मिलता जब सौदा 31.3.1986 से पहले हो जाता. भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 15.3.1986 को स्वीडन की यात्रा कर वहां घोषणा की कि तोप खरीद का सौदा बोफोर्स के साथ हो गया है. क्वात्रोची ने सौदे को बोफोर्स कंपनी द्वारा निश्चित की गई समय सीमा 31.3.1986 के भीतर पूरा करा दिया. भारत सरकार ने 25.5.1986 को अग्रिम धनराशि की पहली किस्त बोफोर्स कंपनी को दे दी. अगस्त 1986 में ए.ई. सर्विसेज का अकाउंट मायल्स स्टाट ने खोला. सी.बी.आई. का मानना है कि यह सब संयोग नहीं है.

आखिर ओट्टावियो क्वात्रोची को बोफोर्स कंपनी ने अपना एजेंट क्यों बनाया, जब कि क्वात्रोची को हथियारों व रक्षा संबंधी मामलों का कोई ज्ञान नहीं है? क्वात्रोची एक चार्टर्ड अकाउंटेंट है तथा 1968 से 1993 के बीच वह स्नैम प्रोगेत्ती का चीफ एग्जीक्यूटिव अफसर था. उसका ज्ञान केवल पाइप लाइन बिछाने तथा तेल ट्रांसपोर्टेशन तक ही सीमित था. क्वात्रोची के साथ यह तथाकथित कंसलटैंसी एग्रीमेंट दरअसल बोफोर्स कंपनी द्वारा किया गया एग्रीमेंट था, ताकि वह तोप सौदे की दौड़ में जीत सके तथा इसे प्राप्त करने के लिए क्वात्रोची का दबाव, जो कि नौकरशाहों व राजनीतिज्ञों पर था, इस्तेमाल किया जा सके. यह नतीजा निकाला जा सकता है कि बिना इस तरह के दबाव को बनाए, बोफोर्स कंपनी यह तोप सौदा हासिल नहीं कर सकती थी.

भारत सरकार द्वारा दी गई पहली इंस्टालमेंट की रकम का तीन प्रतिशत कमीशन के रूप में दिया जाना यह साबित करता है कि ओट्टावियो क्वात्रोची ने सौदे को नेगोशिएट किया तथा ए.बी. बोफोर्स के पक्ष में पलड़ा झुका दिया.

इसका यह भी मतलब निकलता है कि यह प्रक्रिया आगे भी जारी रहने वाली थी और क्वात्रोची इस हैसियत में था कि वह आगे भी भारत के उस समय के प्रधानमंत्री और रक्षा मंत्री व दूसरे पब्लिक सर्वेंट्स के साथ सफलता-पूर्वक सौदे करा सकता था, जिसके बदले में उसे काफी लाभ और कमीशन मिलता. ये सारी बातें प्रिवेंशन ऑफ करप्शन एक्ट और इंडियन पैनल कोड के ख़िलाफ़ है.

इन दिनों ओट्टावियो क्वात्रोची मलेशिया की राजधानी कुआलालंपुर में रह रहा है. प्राप्त सबूतों के आधार पर केंद्रीय जांच ब्यूरो ने दिल्ली की विशेष अदालत के विशेष जज से ओट्टावियो क्वात्रोची के विरुद्ध ग़ैर जमानती वारंट जारी करने का अनुरोध किया. विशेष जज ने कोड ऑफ क्रिमीनल प्रोसीजर के तहत यह आदेश जारी कर दिया कि उनके सामने लाए गए मामले में क्वात्रोची ने अपराध किया है और वह गिरफ्तारी से बचने की कोशिश कर रहा है.

अब केंद्रीय जांच ब्यूरो को तय करना था कि क्वात्रोची को भारत कैसे लाया जाए. इसके दो तरीके थे-या तो मलेशियाई अधिकारियों से संपर्क करते और उनकी मदद से क्वात्रोची को भारत लाने की कोशिश होती या फिर इंटरपोल पुलिस उसे गिरफ्तार करने की कोशिश करती. भारत और मलेशिया के बीच प्रत्यर्पण संधि भी नहीं है. भारत में ऑपरेट करने वाले कई माफिया अब भी इन दिनों मलेशिया में रह रहे हैं और अंतरराष्ट्रीय कानूनों की खामियों का फायदा उठा रहे हैं.

केंद्रीय जांच ब्यूरो को आशंका थी कि अदालत की कार्रवाई की जानकारी मिलते ही क्वात्रोची मलेशिया से किसी अज्ञात देश में जा सकता है. इसलिए उसने इंटरपोल का रास्ता चुना. केंद्रीय जांच ब्यूरो ने इंटरपोल से अनुरोध किया कि वह भारतीय अदालत द्वारा जारी ग़ैर जमानती वारंट की तामील कराए. इंटरपोल ने 17.2.1997 को ओट्टावियो क्वात्रोची के ख़िलाफ़ रेड कार्नर नोटिस जारी कर दिया.

रेड कार्नर नोटिस जारी होने के दूसरे ही दिन इंटरपोल अधिकारियों का एक दल 18.2.1997 को मलेशिया रवाना हो गया और वहां उसने मलेशिया के अटार्नी जनरल से सलाह-मशविरा कर उन कदमों का निर्धारण किया जो उसे ओट्टावियो क्वात्रोची की उपस्थिति निश्चित करने के लिए उठाने थे.

ओट्टावियो क्वात्रोची को जैसे ही भारतीय अधिकारियों और इंटरपोल की कार्रवाइयों की जानकारी मिली, उसने इंटरपोल के कदम को चुनौती दी. उसने अपने वकीलों के जरिए 7.4.1997 को इंटरपोल द्वारा जारी रेड कार्नर नोटिस के आधार पर चुनौती देने वाली पिटीशन दायर की. इस पिटीशन को चार महीने बाद इंटरपोल के सुपरवाइजरी बोर्ड फॉर द इंटरनेशनल कंट्रोल ऑफ इंटरपोल आरकाइव्ज ने सुना. यह सुनवाई 29 और 30 सितंबर, 1997 को ल्योंस, फ्रांस में हुई. दो दिनों की सुनवाई के बाद ओट्टावियो क्वात्रोची के तर्कों को सुपरवाइजरी बोर्ड फॉर द इंटरनेशनल कंट्रोल ऑफ इंटरपोल आरकाइव्ज ने खारिज कर दिया और इंटरपोल द्वारा जारी रेड कार्नर नोटिस को जायज करार दिया. यह नोटिस कुछ दिनों पहले तक जारी था.

लेकिन क्वात्रोची ने हार नहीं मानी और उसने सारी कार्रवाई को ही रुकवाना चाहा. जब वह इंटरपोल के सुपरवाइजरी बोर्ड में हार गया तब उसने भारत की अदालत का दरवाजा खटखटाया. उसने दिल्ली हाईकोर्ट में 24.3.1998 को एक पिटीशन फाइल की. इसमें उसने कहा कि भारतीय संविधान की धारा 226 व 227 के सेक्शन 482 क्रिमीनल प्रोसीजर कोड के तहत उसके ख़िलाफ़ तीस हज़ारी कोर्ट के विशेष जज श्री अजीत भरिहोक द्वारा 6.2.97 को जारी ग़ैर जमानती वारंट को रद्द कर दिया जाए, जिसका संबंध केस नं. आर.सी. 1(ए)/90 ए.सी.यू. आई. वी.एस.पी. सी.सी.बी.आई., न्यू दिल्ली से है.

क्वात्रोची की ओर से श्री दिनेश माथुर ने बहस की और सी.बी.आई. की ओर से श्री वेणु गोपाल ने. दोनों पक्षों ने विभिन्न केसों का हवाला दिया, लेकिन सारी बहस सुनने के बाद दिल्ली हाईकोर्ट के न्यायमूर्ति देविन्दर गुप्ता ने ओट्टावियो क्वात्रोची की पिटीशन खारिज कर दी. अब सी.बी.आई को इस बात की आज़ादी मिल गई कि वह क्वात्रोची को भारत ले आए. लेकिन सीबीआई सफल न हो सकी.

संतोष भारतीय
editor.chauthiduniya@gmail.com

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

हंसराज भारद्वाज

अश्विनी कुमार

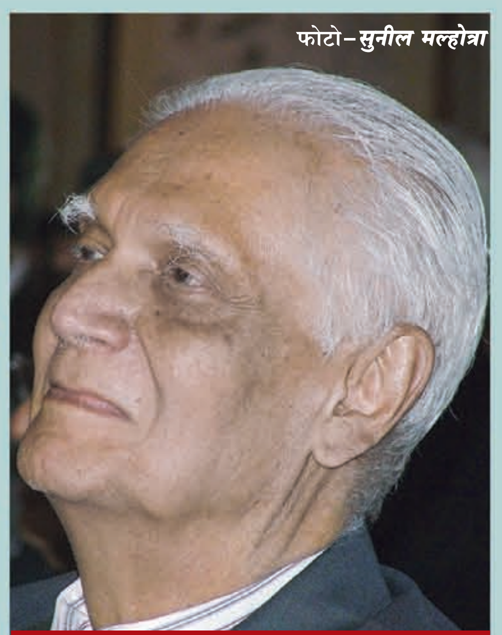

फोटो-*सुनील मल्होत्रा*

मिलन बनर्जी

अदालत ने उठाई उंगली

ओट्टावियो क्वात्रोची के मामले में सीबीआई सवालों के घेरे में है. दिल्ली के चीफ़ मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट ने जब सीबीआई से क्वात्रोची के ख़िलाफ़ रेड कार्नर नोटिस हटने के बाबत सवाल पूछा तो सीबीआई ने उन स्थितिओं का ब्योरा दिया जिनमें किसी व्यक्ति पर से रेड कार्नर नोटिस वापस लिया जाता है. उसने यह साफ नहीं किया कि आख़िर ओट्टावियो क्वात्रोची का मामला किस वर्ग में आता है. जितनी भी दलीलें दी गई हैं उनमें से किसी में क्वात्रोची का मामला फिट नहीं बैठता. रेड कार्नर नोटिस आरोपित व्यक्ति की गिरफ्तारी, आत्मसमर्पण, प्रत्यर्पण, मृत्यु की स्थिति में ही वापस लिया जा सकता है. क्वाात्रोची के साथ ऐसा कुछ भी नहीं है. वैसे वारंट अवैध होने की स्थिति में भी नोटिस हट जाता है. अब वारंट क्यों अवैध हुआ, इस सवाल का जवाब सीबीआई नहीं दे रही. सबसे अजीब बात यह है कि जब 25 नवंबर 2008 को यह नोटिस हटाया गया तो उससे पांच दिन पहले ही सीबीआई ने नोटिस की मौज़ूदगी की सूचना न्यायालय को दी थी. ऐसे में पांच दिनों में यह बदलाव क्यों आ गया. जब न्यायालय ने क्वात्रोची को भारत लाने के दूसरे रास्तों के बारे में पूछा, तो सीबीआई ने दो महीने का समय मांग लिया. सीबीआई ने कहा कि दो बार-मलेशिया और अर्जेंटीना में-पूरा ज़ोर लगाने के बावजूद क्वात्रोची के प्रत्यर्पण की कोशिश नाकाम हो गई थी. सीबीआई का यह भी कहना था कि क्वात्रोची ने नोटिस वापस न लेने पर भारत सरकार पर मुकदमा करने की धमकी दी थी. इसके अलावा उसने मुकदमे के पूरे खर्चे के भुगतान की भी मांग रखी थी. इसके बाद सीबीआई ने अटार्नी जनरल से इस पर राय मांगी थी और इसके बाद ही रेड कार्नर नोटिस को ख़त्म करने के लिए इंटरपोल से बात की गई.

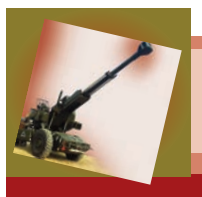

बोफोर्स : तारीख़ों में

- **24 मार्च 1986 :** भारत सरकर और स्विस कंपनी ए बी बोफोर्स के बीच 40 तोपें ख़रीदने के लिए 1, 437 करोड़ रुपए का हुआ करार.
- **16 अप्रैल 1987 :** स्वीडिश रेडियो ने बोफोर्स सौदे के लिए कुछ भारतीय नेताओं और प्रमुख रक्षा अधिकारियों को दलाली दिए जाने का दावा किया.
- **20 अप्रैल 1987 :** तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने लोकसभा को आश्वस्त किया कि इस सौदे में न तो कोई बिचौलिया था और न ही किसी को कोई दलाली दी गई.
- **6 अगस्त 1987 :** बी. शंकरानंद के नेतृत्व में संयुक्त संसदीय जांच समिति गठित.
- **18 जुलाई 1989 :** संयुक्त संसदीय जांच समिति की रिपोर्ट संसद में पेश.
- **नवंबर 1989 :** लोकसभा चुनाव में राजीव गांधी की सरकार पराजित.
- **22 जनवरी 1990 :** सीबीआई ने दर्ज की पहली एफआईआर.
- **दिसंबर 1992 :** सुप्रीम कोर्ट ने एफआईआर को खारिज़ किए जाने वाले दिल्ली हाई कोर्ट के फैसले को पलटा.
- **21 जनवरी 1997 :** चार साल की क़ानूनी लड़ाई के बाद बर्न में भारतीय अधिकारियों को पांच सौ पन्नों वाले गोपनीय दस्तावेज़ सौंपे गए.
- **10 फरवरी 1997 :** इसके आधार पर सीबीआई ने क्वात्रोची और हथियारों के कारोबारी विन चड्ढा के ख़िलाफ़ केस दर्ज़ किया. इसमें राजीव गांधी और तत्कालीन रक्षा सचिव एस के भटनागर और कई अन्य लोगों के भी नाम थे. मलेशिया और संयुक्त अरब अमीरात को पत्र लिखकर ओट्टाविया क्वात्रोची और विन चड्ढा की गिरफ्तारी और प्रत्यर्पण की मांग की गई.
- **मई 1998 :** दिल्ली हाई कोर्ट ने क्वात्रोची की यह दलील नहीं मानी कि सीबीआई के अनुरोध पर इंटरपोल द्वारा जारी रेड कॉर्नर नोटिस वापस लिया जाए.
- **22 अक्टूबर 1999 :** सीबीआई ने विन चड्ढा, क्वात्रोची, पूर्व रक्षा सचिव एस के भटनागर, बोफोर्स कंपनी के तत्कालीन प्रमुख मार्टिन आर्डिबो और ए बी बोफोर्स कंपनी के ख़िलाफ़ पहली चार्जशीट दायर की. 1991 में ही देहांत हो जाने के कारण राजीव गांधी का जिक्र इसमें ऐसे अभियुक्त के तौर पर किया गया था, जिसके ख़िलाफ़ मुकदमा नहीं चलाया जा सकता.
- **29 सितंबर 2000 :** हिंदुजा बंधुओं ने लंदन में बयान जारी किया कि ए बी बोफोर्स से जो रक़म उन्हें मिली है, उसका 1,437 करोड़ रुपए के तोप सौदे से कुछ लेना-देना नहीं है.
- **9 अक्टूबर 2000 :** सीबीआई ने पूरक चार्जशीट दाखिल की. इसमें हिंदुजा बंधुओं-श्रीचंद, गोपीचंद और प्रकाश को भी बोफोर्स दलाली कांड का आरोपी बताया.
- **19 जनवरी 2001 :** अदालत के सामने हिंदुजा बंधुओं ने समर्पण किया. उन्हें ज़मानत तो मिल गई, लेकिन विदेश जाने की इजाज़त नहीं दी गई.
- **27 सितंबर 2001 :** हिंदुजा बंधुओं को सुप्रीम कोर्ट ने विदेश जाने की इजाज़त दी, लेकिन इस शर्त के साथ कि वे एक साथ विदेश नहीं जाएंगे.
- **24 अक्टूबर 2001 :** दिल का दौरा पड़ने से ए बी बोफोर्स कंपनी के पूर्व एजेंट विन चड्ढा का दिल्ली में निधन. इससे पहले इस साल की शुरुआत में इस मामले के एक अन्य आरोपी और पूर्व रक्षा सचिव एस के भटनागर का भी निधन हो चुका था.
- **फरवरी 2002 :** मामले को जल्दी निबटाने के लिए सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर विशेष अदालत गठित. रोजाना सुनवाई का निर्देश.
- **10 जून 2002 :** हिंदुजा बंधुओं के ख़िलाफ़ चार्जशीट को दिल्ली हाई कोर्ट ने खारिज़ किया.
- **28 जुलाई 2003 :** भारत के अनुरोध पर ब्रिटेन ने क्वात्रोची के खाते सील किए.
- **5 फरवरी 2004 :** दिल्ली हाई कोर्ट ने राजीव गांधी और अन्य के ख़िलाफ़ घूस देने के आरोपों को खारिज किया.
- **31 मई 2005 :** दिल्ली हाई कोर्ट ने हिंदुजा बंधुओं को बोफोर्स मामले में बरी किया.
- **दिसंबर, 2005 :** तत्कालीन अतिरिक्त सोलिसिटर जनरल बी. दत्ता ने ब्रिटिश सरकार से क्वात्रोची के दो ब्रिटिश खातों को डी-फ्रिज करने का अनुरोध किया.
- **16, जनवरी 2005 :** सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को निर्देश दिया कि वह सुनिश्चित करे कि क्वात्रोची अपने दोनों ब्रिटिश खातों से पैसा न निकाल सके.
- **23 जनवरी, 2005 :** सीबीआई ने माना कि उन दो खातों से करीब 4.6 मिलियन डॉलर पहले ही निकाले जा चुके थे.
- **6 फरवरी, 2007 :** क्वात्रोची अर्जेंटीना में गिरफ्तार, लेकिन सीबीआई ने उसकी गिरफ्तारी की खबर नौ मई को जारी की.
- **13 फरवरी, 2007 :** सीबीआई ने सुप्रीम कोर्ट में क्वात्रोची के खातों की जानकारी देते हुए उसके अर्जेंटीना में पकड़े जाने का जिक्र नहीं किया. बाद में सीबीआई ने माना कि उसके पास यह जानकारी थी.
- **26, फरवरी 2007 :** क्वात्रोची जमानत पर रिहा.
- **7, मार्च 2007 :** सीबीआई ने अर्जेंटीना के विदेश विभाग के समक्ष क्वात्रोची के प्रत्यर्पण के लिए अपील की.
- **23, मार्च 2007 :** क्वात्रोची के प्रत्यर्पण की अपील पर अर्जेंटीना में सुनवाई शुरू
- **8 जून 2007 :** भारत की प्रत्यर्पण की अपील एल डोराडो कोर्ट ने खारिज़ की.
- **अक्टूबर 2008 :** अटार्नी जनरल मिलन बनर्जी ने सलाह दी कि सीबीआई क्वात्रोची के ख़िलाफ़ जारी रेड कार्नर नोटिस को वापस ले सकती है.
- **नवंबर 2008 :** सीबीआई ने इंटरपोल से नोटिस वापस लेने को कहा.
- **अप्रैल 2009 :** सीबीआई की रेड कार्नर नोटिस हटाने पर प्रेस कांफ्रेस
- **30 अप्रैल 2009 :** अदालत ने सीबीआई को प्रत्यर्पण के दूसरे रास्ते तलाशने के बारे में जवाब देने के लिए वक्त दिया. अगली सुनवाई सितंबर में होगी.

बोफोर्स कंपनी ने भी सरकार को अंधेरे में रखा

राजीव गांधी ने इक्कीसवीं शताब्दी में देश को जाने के लिए तैयार रहने की बात कही थी. इसी क्रम में उन्होंने अचानक कैबिनेट की मीटिंग में कहा कि, आज से देश के साथ होने वाले किसी सौदे में कोई बिचौलिया नहीं होगा. इसे उन्होंने देश की एक्सप्रेस पॉलिसी कहा. उनसे उनके साथियों ने भी कहा कि दुनिया का व्यापार बिना मिडलमैन के नहीं चलता, तब हम कैसे चलाएंगे.

राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री बनने के साथ कई चमत्कारिक काम किए थे. उन्होंने कहा था कि वह सत्ता के दलालों को पास नहीं आने देंगे, क्योंकि वे गुमराह करते हैं. उन्होंने कहा था कि दिल्ली से विकास के लिए जाने वाले एक रुपए का 85 पैसा दलालों और नौकरशाहों की जेब में चला जाता है, केवल पंद्रह पैसा ही विकास पर खर्च होता है. राजीव गांधी ने इक्कीसवीं शताब्दी में देश को जाने के लिए तैयार रहने की बात कही थी. इसी क्रम में उन्होंने अचानक कैबिनेट की मीटिंग में कहा कि, आज से देश के साथ होने वाले किसी सौदे में कोई बिचौलिया नहीं होगा. इसे उन्होंने देश की एक्सप्रेस पॉलिसी कहा. उनसे उनके साथियों ने भी कहा कि दुनिया का व्यापार बिना मिडलमैन के नहीं चलता, तब हम कैसे चलाएंगे. राजीव गांधी ने इसे नहीं माना और कहा कि बिचौलियों को मिलने वाला पैसा दरअसल देश का ही होता है, अत: उन्हें हटाने से देश का फायदा होगा. उन्होंने अपने मंत्रियों और केंद्र सरकार के सभी सचिवों को इसका सख्ती से पालन करने का आदेश दिया.

इसलिए जब भारत के लिए तोपें खरीदने की बात तय हुई, तब भारत सरकार ने बातचीत के दौरान बोफोर्स कंपनी के तत्कालीन अध्यक्ष मार्टिन ओर्डिबो तथा दूसरी कंपनियों को स्पष्ट कर दिया था कि किसी भी एजेंट या बिचौलिए को कोई भी कंपनी तोप खरीद सौदे में नहीं रखेगी. मई 1985 में उस समय के रक्षा सचिव श्री एस के भटनागर ने एबी बोफोर्स के अध्यक्ष और दूसरे निविदादाताओं को विशेष तौर पर लिख दिया था कि 155 होवित्जर तोप सौदे में किसी भी मध्यस्थ को न लाया जाए. इतना ही नहीं, यदि पहले भी किसी ने किसी को एजेंट बनाया था तो उस कमीशन की रक़म को तोप सौदे की रक़म से घटाया जाए. बोफोर्स कंपनी के अध्यक्ष मार्टिन ओर्डिबो ने 10.3.1986 को एक पत्र रक्षा सचिव एस.के भटनागर को लिखा, इसमें उन्होंने स्पष्ट कहा कि उन्होंने किसी को एजेंट नहीं बनाया है और उसे तो बिलकुल नहीं जो कि भारत में इस प्रोजेक्ट पर काम कर रहा है.

भारत सरकार की इस स्पष्ट नीति के आधार पर कि सौदे के बीच कोई एजेंट या बिचौलिया नहीं होगा तथा यदि बोफोर्स कंपनी ने किसी को रखा तो उस पर पैनल्टी लगेगी, भारत सरकार और बोफोर्स कंपनी के बीच इस आशय का एक समझौता हुआ. दोनों पक्षों में जो समझौता हुआ, उसकी तारीख़ थी–24.3.1986.

इसके एक साल बाद रक्षा मंत्रालय को जानकारी मिली कि स्वीडिश रेडियो ने अपने प्रसारण में कहा कि बोफोर्स तोप सौदे में किक बैक (रिश्वत) दी गई है. रक्षा मंत्रालय ने भारतीय राजदूत को इसकी सत्यता का पता लगाने को कहा. उस समय रक्षा मंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह थे.

राजदूत ने बोफोर्स कंपनी को पत्र लिखा तथा स्वीडिश रेडियो के आरोप पर स्पष्ट स्थिति जाननी चाही. बोफोर्स कंपनी और भारत सरकार के बीच जिस तारीख़ को दलाल न रखने का समझौता हुआ था उसके ठीक एक साल बाद 24.4.1987 को बोफोर्स कंपनी ने राजदूत को उनके पत्र का उत्तर भेजा. पत्र में बोफोर्स कंपनी ने लिखा कि स्वीडिश रेडियो ने जिस धनराशि को दिए जाने की बात कही है, वह बिलकुल वैधानिक है तथा स्वीडिश करंसी रेग्युलेशन और दूसरे स्वीडिश कानूनों के अनुसार है. इस पत्र में कहा गया है कि यह रक़म किसी भारतीय कंपनी को नहीं दी गई है. इस रक़म का रिश्ता 1986 के बोफोर्स तोप सौदे से नहीं है.

संयुक्त संसदीय समिति की जांच शुरू होने से पहले बोफोर्स कंपनी का प्रतिनिधि भारतीय अधिकारियों से आकर मिला तथा उसने स्वीकार किया था कि कुल मिलाकर स्वीडिश मुद्रा में से 319.40 मिलियन उन कंपनी को दिया गया जो भारत से बाहर रजिस्टर्ड हैं. इस कंपनी में स्वेंस्का इंक पनामा और ए.ई. सर्विसेज लिमिटेड यूके शामिल हैं. इन्हें यह रक़म वाइंडिंग-अप चार्ज के रूप में दी गई है.

इसके बाद संयुक्त संसदीय समिति ने जांच प्रारंभ की, तब बोफोर्स कंपनी ने स्वीकार किया कि उसने तीन कंपनियों को पैसे दिए, पर उसने समिति को उनका नाम बताने से इंकार कर दिया. इसी दौरान स्वीडिश नेशनल ऑडिट ब्यूरो यह जांच कर रहा था कि क्या इस सौदे में कमीशन दिया गया है. जांच के दौरान स्वीडिश नेशनल ऑडिट ब्यूरो को पता चला कि मई 1986 से मार्च 1987 के बीच स्विटज़रलैंड के बैंकों में ए बी बोफोर्स कंपनी ने पैसे भेजे हैं. कमर्शियल कॉन्फिडेंशिएलिटी के नाम पर बोफोर्स ने अब भी इन कंपनियों का नाम नहीं बताया तथा स्वीडिश नेशनल ऑडिट ब्यूरो को ज़्यादा जानकारी देने से मना कर दिया. ऑडिट ब्यूरो को इस बात का पता चला कि बोफोर्स द्वारा दिए गए बयानों में एकरूपता नहीं है, खासकर उनमें जिनका संबंध एजेंटों की पहचान तथा पैसा दिया क्यों गया, जैसे सवालों से था.

उधर 7.2.1990 को दिल्ली के विशेष जज द्वारा स्विस अधिकारियों को लिखे गए लेटर रोगेटरी के बाद–जिसमें अनुरोध किया गया था कि स्विस अधिकारी जांच की प्रक्रिया पूरी करें तथा सबूत इकट्ठा करें–स्विस अधिकारियों ने जांच की तथा रिपोर्ट और कुछ दस्तावेज भारत सरकार को दिसंबर 1990 तथा जनवरी 1997 को सौंपे. स्विस अधिकारियों की जांच ने यह साबित किया कि बोफोर्स कंपनी ने इस सौदे में एजेंट बनाए थे तथा दो कंपनियों–जिनमें एक ए.ई. सर्विसेज लिमि. तथा दूसरी स्वेंस्का इनकार्पोरेटेड थी–को सौदा कराने के बदले में धनराशि दी गई.

ओट्टाविया क्वात्रोची इटालियन नागरिक था और इटालियन पासपोर्ट पर इटालियन कंपनी स्नैम प्रोगेत्ती के रीजनल डायरेक्टर के पद पर काम कर रहा था. 15 नवंबर, 1985 को ओट्टाविया क्वात्रोची व बोफोर्स कंपनी

भारत सरकार की इस स्पष्ट नीति के आधार पर कि सौदे के बीच कोई एजेंट या बिचौलिया नहीं होगा और यदि बोफोर्स कंपनी ने किसी को रखा तो उसपर पैनल्टी लगेगी, भारत सरकार और बोफोर्स कंपनी के बीच इस आशय का एक समझौता हुआ. दोनों पक्षों के बीच जो समझौता हुआ उसकी तारीख़ थी–24.3.1986.

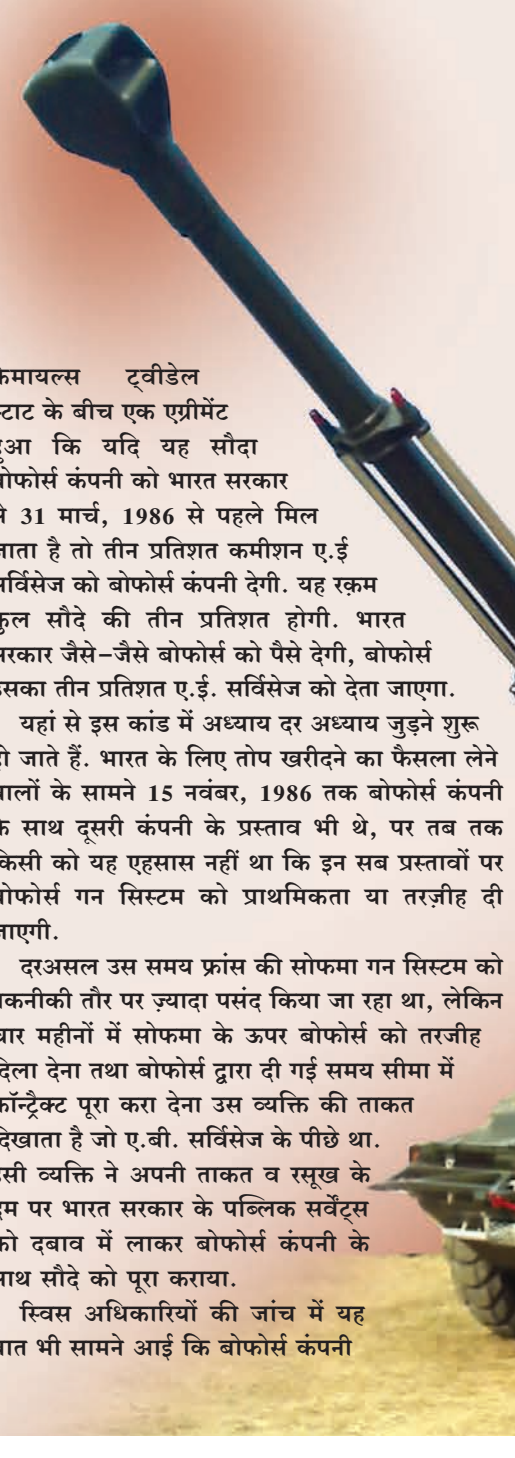

केमायल्स ट्वीडेल स्टाट के बीच एक एग्रीमेंट हुआ कि यदि यह सौदा बोफोर्स कंपनी को भारत सरकार से 31 मार्च, 1986 से पहले मिल जाता है तो तीन प्रतिशत कमीशन ए.ई सर्विसेज को बोफोर्स कंपनी देगी. यह रक़म कुल सौदे की तीन प्रतिशत होगी. भारत सरकार जैसे-जैसे बोफोर्स को पैसे देगी, बोफोर्स उसका तीन प्रतिशत ए.ई. सर्विसेज को देता जाएगा.

यहां से इस कांड में अध्याय दर अध्याय जुड़ने शुरू हो जाते हैं. भारत के लिए तोप खरीदने का फैसला लेने वालों के सामने 15 नवंबर, 1986 तक बोफोर्स कंपनी के साथ दूसरी कंपनी के प्रस्ताव भी थे, पर तब तक किसी को यह एहसास नहीं था कि इन सब प्रस्तावों पर बोफोर्स गन सिस्टम को प्राथमिकता या तरज़ीह दी जाएगी.

दरअसल उस समय फ्रांस की सोफमा गन सिस्टम को तकनीकी तौर पर ज़्यादा पसंद किया जा रहा था, लेकिन चार महीनों में सोफमा के ऊपर बोफोर्स को तरजीह दिला देना तथा बोफोर्स द्वारा दी गई समय सीमा में कॉन्ट्रैक्ट पूरा करा देना उस व्यक्ति की ताकत दिखाता है जो ए.बी. सर्विसेज के पीछे था. इसी व्यक्ति ने अपनी ताकत व रसूख के दम पर भारत सरकार के पब्लिक सर्वेंट्स को दबाव में लाकर बोफोर्स कंपनी के साथ सौदे को पूरा कराया.

स्विस अधिकारियों की जांच में यह बात भी सामने आई कि बोफोर्स कंपनी ने स्टॉकहोम स्थित स्कान्डिनाविस्का एन्सकिल्डा बांकेन से 3 सितंबर 1986 को 50,463,966,00 सेक (अमरीकी डॉलर 7,343,941,98 के बराबर) निकाले तथा उन्हें अकाउंट नं. 18051-53, जो कि ए.ई. सर्विसेज लिमिटेड के नाम था, में जमा कराया. यह अकाउंट ज्यूरिख के नोर्डिफिनांज बैंक का है. इस अकाउंट को, जो कि ए.ई. सर्विसेज लिमि. केयर ऑफ मायो एसोसिएट्स एस.ए. जेनेवा का है, केवल पंद्रह दिन पहले 20 अगस्त, 1986 को माइल्स ट्वीडेज स्टाट ने डायरेक्टर की हैसियत से खोला था.

ए.ई. सर्विसेज के इस अकाउंट से दो किस्तों में 7,123,900 अमरीकी डॉलर निकाले गए. इसमें 70,00,000,00 अमरीकी डॉलर 16 सितंबर, 1986 को तथा 1,23,900,00 अमरीकी डॉलर 29 सितंबर 1986 को निकाले गए. निकाली गई इस रकम को कोलबर इन्वैस्टमेंट लिमि. इंक पनामा के जेनेवा स्थित यूनियन बैंक के अकाउंट नं. 254,561,60 डब्ल्यू में ट्रांसफर किया गया.

कोलबर इंवैस्टमेंट लिमि. इंक के इस अकाउंट से पुन: 7,943,000,00 डॉलर 25.7.1988 को अकाउंट नं. 488320,60 × ऑफ एम/एस वेटेल्सेन ओवरसीज एस.ए. में ट्रांसफर किए गए. यह अकाउंट भी जेनेवा के यूनियन बैंक में ही है. एम/एस वेटेल्सेन ओवरसीज के इसी अकाउंट से पुन: 21 मई, 1990 को 9,200,000,00 डॉलर ट्रांसफर किया गया. इस बार यह रकम अकाउंट नं. 123893 में ट्रांसफर की गई. यह अकाउंट इंटरनेशनल डेवेलपमेंट कं. का है, जो एनवाशेर (सी.आई) लिमि. सेंट पीटर पोर्ट, गुएरन्से (चैनल आइसलैंड) में स्थित है.

ये एकाउंट एम/एस कोलबर इन्वैस्टमेंट्स लिमि. इंक तथा वेटेल्सेन ओवरसीज को ओट्टाविया क्वात्रोची तथा उनकी पत्नी श्रीमती मारिया क्वात्रोची कंट्रोल करती थीं. जब चैनल आइसलैंड में जांच हुई तब पता चला कि यह सारी रकम दस दिनों के भीतर, (जब वह गुएरन्से में आई उसके बाद) दोबारा स्विटजरलैंड तथा आस्ट्रिया ले जाई गई.

स्विस अधिकारियों तथा स्वीडिश अधिकारियों की जांच ने यह साबित कर दिया कि बोफोर्स कंपनी से प्राप्त कमीशन को पाने वाली कंपनी ए.ई. सर्विसेज का लाभार्थी ओट्टाविया क्वात्रोची है. स्नैम प्रोगेत्ती से मिले कागजातों ने यह भी साबित कर दिया कि ओट्टाविया क्वात्रोची तथा उसकी पत्नी उस समय जेनेवा ही में थे, जब ये अकाउंट खोले गए.

उन्होंने ही बैंक अकाउंट तथा अन्य दस्तावेजों पर दस्तखत किए थे. जब स्विस अधिकारियों ने क्वात्रोची तथा उनकी पत्नी के पते, जो उन्होंने बैंक अकाउंट में लिखे थे, भारत सरकार को दिए तो सरकार चकरा गई. दोनों ने पता दिया था- कालोनी ईस्ट, न्यू डेली (इंडिया). यह पता सारे भारत में कहीं है ही नहीं. दोनों ने ही सावधानीवश जालसाजी करने के चक्कर में गलत पता लिखवाया था.

यहां सवाल उठता है कि यह हुआ कैसे, क्योंकि स्विटजरलैंड में बैंक अकाउंट खोलते समय पासपोर्ट पर लिखा पता देखा जाता है तथा वही लिखा जाता है. तब क्या ओट्टाविया क्वात्रोची व उसकी पत्नी के पास कोई और पासपोर्ट भी था जिसपर कालोनी ईस्ट, न्यू डेली का पता लिखा था?

संतोष भारतीय

editor.chauthiduniya@gmail.com

शीर्ष दलों में नेतृत्व पर घमासान

मनीष कुमार

भारतीय चुनावी राजनीति में एक अजीब सी हवा चली है-बुजुर्ग नेताओं को अपमानित करने की. उन्हें सार्वजनिक तौर पर शर्मसार करने की नई शुरुआत हुई है. शीर्ष नेताओं का अपमान जिस तरह इस चुनाव में हो रहा है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ. चुनाव से पहले भाजपा ने लालकृष्ण आडवाणी को प्रधानमंत्री घोषित किया था और अब चुनाव के दौरान उसी पार्टी के नेता नरेंद्र मोदी का नाम उछाल कर आडवाणी को अपमानित किया जा रहा है. कांग्रेस भी मनमोहन सिंह का उपहास कर रही है. पांच साल तक वह प्रधानमंत्री रहे. सोनिया गांधी ने भी ऐलान कर दिया कि वही देश के अगले प्रधानमंत्री होंगे. इसके बावजूद कांग्रेस के कई नेता राहुल गांधी को अगला प्रधानमंत्री बता कर मनमोहन सिंह जैसे ईमानदार और सीधे-सादे इंसान का मखौल उड़ा रहे हैं. अगर प्रधानमंत्री के नाम पर अपनी ही पार्टी के अंदर सर्वसम्मति नहीं है, तो इसका जायजा लेना जरूरी है कि देश की दो सबसे बड़ी पार्टियों के पास विकल्प आख़िर क्या हैं?

प्रियंका कांग्रेस का आख़िरी दांव हैं

पंद्रहवीं लोकसभा का चुनाव सोनिया गांधी की अग्निपरीक्षा है. यह दूसरा आम चुनाव है जिसमें सोनिया गांधी और राहुल गांधी ने कांग्रेस के लिए प्रचार किया है. 2004 के चुनाव में जनता ने एनडीए सरकार के ख़िलाफ़ वोट दिया था, न कि कांग्रेस को जनादेश दिया था. लोग एनडीए से नाराज थे. एनडीए अपनी ग़लतियों की वजह से चुनाव हार गया. नतीज़ा यह हुआ कि देश में पिछले पांच साल से उस यूपीए की सरकार चल रही है, जिसका नेतृत्व सोनिया गांधी कर रही हैं. इस बार पहली दफा देश की जनता यह तय करेगी कि उन्हें सोनिया गांधी के नेतृत्व में भरोसा है या नहीं. सोनिया गांधी के नेतृत्व में कई बड़े फ़ैसले लिए गए. किसानों के ऋणों को माफ करने की सरकार की सबसे बड़ी योजना आई. पूरे देश में बेरोज़गारों को रोज़गार देने के लिए योजनाएं चलाई गईं. हालांकि स्टाक मार्केट ज़मीन पर गिरा तो महंगाई आसमान छूने लगी. अब चुनाव आया है. सोनिया गांधी पहली बार अपने सरकार के समर्थन में वोट मांग रही हैं. पहली बार सोनिया गांधी के नेतृत्व पर देश की जनता का फ़ैसला सुनने का वक्त आया है. कांग्रेस पार्टी का सबसे मज़बूत पक्ष ही उसकी सबसे कमज़ोर कड़ी है. सोनिया गांधी और राहुल गांधी के अलावा कांग्रेस के पास राष्ट्रीय स्तर के ऐसे नेता नज़र नहीं आ रहे हैं, जो चुनाव में हवा का रुख बदल सकते हों. नेता हैं भी, तो उन्हें आगे आने नहीं दिया जा रहा है. हालत यह है कि कांग्रेस में सोनिया और राहुल के अलावा कोई दूसरा ऐसा नेता नज़र नहीं आता जो विभिन्न राज्यों में भीड़ इकट्ठी कर सके, जिसमें लोगों का विश्वास हो. जनता के बीच जिनकी साख हो. पंद्रहवीं लोकसभा चुनाव में कांग्रेस का चुनाव प्रचार पूरी तरह से सोनिया गांधी और राहुल गांधी पर निर्भर है. जिस तरह 2004 के चुनावों में सोनिया गांधी और राहुल गांधी के रोड शो ने कमाल दिखाया और कांग्रेस की सीटें बढ़ गईं, उसी तरह इस बार भी कांग्रेस को इन दोनों का करिश्मा चलने का भरोसा है. इस बार इन दोनों के प्रचार का असर चुनाव पर क्या हुआ, यह तो परिणाम आने पर पता चलेगा लेकिन पहले यह समझना ज़रूरी है कि चुनाव के बाद कांग्रेस के पास क्या-क्या विकल्प होंगे.

अगर कांग्रेस की सीटें कम हुईं तो क्या होगा

अगर इस चुनाव में कांग्रेस की सीटें कम हुईं तो सबसे ज़्यादा नुकसान सोनिया गांधी का होगा. सोनिया गांधी का राजनीतिक कद कम होगा. सरकार बनाना तो दूर कांग्रेस में ही सोनिया गांधी के नेतृत्व पर सवाल उठने लगेंगे. ऐसा इसलिए होगा, क्योंकि कांग्रेस के नेताओं को लगेगा कि सोनिया और राहुल गांधी चुनाव जितवाने की क्षमता नहीं रखते. कांग्रेस के नेता खुलकर सामने भले न कहें, लेकिन बंद दरवाजे के अंदर कहना शुरू कर देंगे कि हार की वजह सोनिया और राहुल गांधी रहे, इसका दूसरा परिणाम यूपीए में देखने को मिलेगा. यूपीए में फिर से बिखराव होगा. जो पार्टियां पिछली बार कांग्रेस के नेतृत्व में सरकार बनाने को सहमत थीं वे तीसरे मोर्चे या फिर एनडीए के साथ जा सकती हैं. कांग्रेस अकेली पड़ जाएगी. लालू यादव, मुलायम सिंह और रामविलास पासवान पहले ही यूपीए को छोड़ कर चौथा मोर्चा बना चुके हैं. इतना ही नहीं, लालू यादव तो कांग्रेस को ही बाबरी मस्ज़िद ध्वंस के लिए जिम्मेदार बता रहे हैं. कांग्रेस के पास लालू के इन आरोपों का सक्षम जवाब नहीं है. अगर कोई कद्दावर मुस्लिम नेता होता तो कांग्रेस लालू का जवाब दे पाती. कांग्रेस में अजीबो-गरीब स्थिति है. पार्टी जिसे नेता मानती है उन्हें मुसलमानों का समर्थन नहीं है. और जो मुसलमानों के नेता हैं, उन्हें पार्टी नेता नहीं मानती. आम मुसलमान सलमान खुर्शीद को नेता नहीं मानते, लेकिन पार्टी मानती है. परवेज हाशमी मुसलमानों के नेता हैं, लेकिन पार्टी ने उन्हें सचिव बनाकर दिल्ली में बैठा रखा है. अगर बीजेपी सरकार बनाने में कामयाब हो जाती है तो देश में सेकुलर ताक़तों को कमज़ोर करने की भी जिम्मेदारी सोनिया गांधी पर आ जाएगी. अगर ऐसा हुआ तो मुसलमानों के बीच कांग्रेस की साख ख़त्म होगी. आगे आने वाले चुनावों में मुसलमान अगर कांग्रेस का साथ न दें तो इसकी जिम्मेदारी भी लोकसभा चुनाव में हुई कांग्रेस की गलतियों पर ही आएगी. वैसे कांग्रेस की असल परेशानी यह नहीं है. चुनाव परिणामों को लेकर जिस तरह की भ्रम की स्थिति है, उसमें कुछ भी हो सकता है. ऐसे में अगर कांग्रेस की सीटें 100 के आसपास या उससे कम आती हैं तो इस बात की संभावना बढ़ जाती है कि कांग्रेस टूट जाए. टूटे हुए कांग्रेस का एक धड़ा तीसरा मोर्चा और एनडीए का साथ दे सकता है. ऐसा इसलिए होगा क्योंकि नेता किसी पार्टी में तभी तक रहते हैं जब तक उन्हें उम्मीद हो कि पार्टी का टिकट उन्हें चुनाव जिताने के काम आ सकता है. चुनाव में अपना सब कुछ दांव लगाने वाले नेताओं को जब यह विश्वास हो जाए कि इस पार्टी के नेता जिता नहीं सकते तो पार्टी छोड़ने में और दूसरे विकल्पों की तलाश करने में वे अधिक समय नहीं लगाते हैं. अगर कांग्रेस की सीटें सौ के आसपास हो जाती है तो पार्टी की स्थिति किसी डूबते हुए जहाज की तरह हो जाएगी और नेताओं की स्थिति उस पर सवार यात्रियों की, जो अपनी जान बचाने के लिए किसी भी हद तक जाने को आतुर होंगे. ऐसी परिस्थिति में जब कांग्रेस के नेताओं का सोनिया गांधी और राहुल के नेतृत्व पर से विश्वास उठ जाएगा तो पार्टी को बचाने के लिए कांग्रेस के पास एक ही रास्ता बचेगा. प्रियंका ही एक मोहरा हैं, जो कांग्रेस को इस स्थिति से उबार सकेंगी. क्योंकि प्रियंका को देखकर तो यही लगता है कि उनमें नेतृत्व के लिए सारी प्रतिभा और व्यक्तित्व है. कांग्रेस के नेताओं में सिर्फ प्रियंका ही यह भरोसा जगा सकती हैं कि पार्टी उन्हें चुनाव जिता सकती है.

अगर कांग्रेस की सीटें पहले से ज़्यादा हुईं तो...

कांग्रेस की सीटें अगर बढ़ती हैं तो इसका सबसे ज़्यादा फायदा सोनिया गांधी को मिलेगा. भारतीय राजनीति में उनका कद बढ़ेगा. सोनिया उस मुकाम को हासिल करेंगी जो राजीव गांधी नहीं कर सके. यूपीए का पुनर्गठन होगा और कांग्रेस के नेतृत्व में सरकार बनेगी. और इसके बाद ही तय होगा कि देश का अगला प्रधानमंत्री कौन होगा. अनुभवहीनता का हवाला देकर राहुल गांधी ने खुद को प्रधानमंत्री की रेस से बाहर कर लिया. वह प्रधानमंत्री नहीं बनेंगे. उनकी जगह कोई और प्रधानमंत्री होगा. यह कौन होगा, यह अभी तय नहीं है. मनमोहन सिंह के नाम पर लेफ्ट पार्टियां समर्थन भी नहीं देंगी. वैसे भी मनमोहन सिंह का स्वास्थ्य पहले जैसा नहीं है. इसलिए प्रधानमंत्री की कुर्सी पर वह दोबारा नहीं आएंगे, यह तय है. पार्टी में ऐसे दूसरे नेता हैं जो प्रधानमंत्री के उम्मीदवार हो सकते हैं. प्रणव मुखर्जी, ए के एंटनी और दिग्विजय सिंह प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार हो सकते हैं लेकिन इनके प्रधानमंत्री बनते ही कांग्रेस के कई दिग्गज नेता नाराज़ हो जाएंगे. कांग्रेस यह जोख़िम नहीं उठा सकती. आशंका है कि अगर ऐसा हुआ तो पार्टी के अंदर विश्वासघात और भितरघात का दौर शुरू हो जाएगा. कांग्रेस की सबसे बड़ी समस्या यह है कि गांधी परिवार के बाहर अब उनके पास ऐसा कोई भी नेता नहीं जो पार्टी के अंदर सर्वमान्य हो. ऐसे में प्रियंका ही कांग्रेस का आखिरी दांव होंगी. प्रियंका के प्रधानमंत्री बनने से कांग्रेस को कई फायदे होंगे. कई पार्टियां समर्थन देगी. पार्टी के अंदर अंतर्विरोध खत्म हो जाएगा. पार्टी नहीं टूटेगी. लोकसभा चुनाव के परिणाम जो भी हों, कांग्रेस के लिए प्रियंका ही आख़िरी दांव हैं. पार्टी को ज़्यादा सीटें मिलती हैं और कांग्रेस सरकार बनाने के स्थिति में आती है तो सिर्फ प्रियंका के नाम पर ही कांग्रेस के अंदर और बाहर से समर्थन देने वाली पार्टियों में सहमति बनने के आसार हैं. अगर कांग्रेस को कम सीटें आती हैं तो पार्टी को बचाने के लिए प्रियंका को ही मैदान में उतरना पड़ेगा.

प्रियंका ने समझदारी के साथ अपनी मार्केटिंग भी की है. सबसे पहले अपने को दादी इंदिरा गांधी जैसा बताया. सबूत में नाक दिखाई और कहा कि यह इंदिरा गांधी जैसी है और फिर अपनी साड़ियों के बारे में बताया कि वे तो उनकी दादी की ही हैं. इतना ही नहीं, साड़ियां भी वह इंदिरा जी की तरह ही पहनती हैं. प्रियंका ने संदेश दे दिया कि वह न केवल बहादुर हैं, विपक्ष का सामना भी कर सकती हैं और देश को बेहतर युवा नेतृत्व दे सकती हैं.

फोटो- पीटीआई

भाजपा में प्रधानमंत्री की तलाश

भाजपा ने पहले लालकृष्ण आडवाणी को भावी प्रधानमंत्री घोषित कर दिया. बैठकों और रैलियों में उन्हें प्रधानमंत्री जी कह कर पुकारा जाने लगा. मीडिया के जरिए आक्रामक प्रचार शुरू किया गया और दुनिया भर में अख़बार, इंटरनेट और टेलीविजन के जरिए यह बात फैला दी गई कि देश के अगले प्रधानमंत्री आडवाणी जी होंगे. लेकिन चुनाव प्रचार के दौरान गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी को एक सर्वगुण संपन्न प्रधानमंत्री बता कर भाजपा वाले ही आडवाणी जी को अपमानित करने का काम कर रहे हैं. किसी एक ने कहा होता तो ग़लती मान कर भुलाया जा सकता था. किसी छोटे नेता ने कहा होता, तो भी उसे महत्वहीन समझा जा सकता था. लेकिन मोदी को भावी प्रधानमंत्री बताने वाले वे लोग हैं जो आडवाणी और बीजेपी के प्रचार-प्रसार के कमांडर हैं. ये वे लोग हैं जिनका फ़ैसला भारतीय जनता पार्टी का फ़ैसला होता है. प्रधानमंत्री को लेकर भाजपा में चल रहे संवाद से यह समझना चाहिए कि अगर भारतीय जनता पार्टी को सरकार बनाने का मौका मिलता है तो प्रधानमंत्री कौन होगा, इस पर पार्टी की एक राय नहीं है. मतलब यह कि आडवाणी जी को चुनाव के बाद पार्टी प्रधानमंत्री बनाएगी या नहीं, अभी तय नहीं है. क्या आडवाणी प्रधानमंत्री बनेंगे? क्या आडवाणी के चेहरे के पीछे मोदी को प्रधानमंत्री बनाने की तैयारी है? क्या मोदी आडवाणी के ख़िलाफ़ हैं? क्या आडवाणी का अपने ही कमांडरों पर से भरोसा उठ गया है? मोदी का नाम उछाले जाने के बाद आडवाणी ने मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिहं चौहान का नाम भावी प्रधानमंत्री के रूप में क्यों लिया? क्या आडवाणी की जगह मुरली मनोहर जोशी, जसवंत सिंह, अरुण जेटली या फिर खुद मोदी प्रधानमंत्री बन सकते हैं? भाजपा में चुनाव नतीजों के आने से पहले ही नेतृत्व को लेकर महासंग्राम शुरू हो गया है. यही वजह है कि आडवाणी के नेतृत्व पर सवाल उठने लगे हैं. अब तक जो संकेत मिल रहे हैं उससे भ्रम की स्थिति पैदा हो गई है. यह साफ-साफ लग रहा है कि एनडीए को बहुमत नहीं मिलने वाला है. भाजपा के नेताओं को अब लगने लगा है कि सरकार बनाने में मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है. भाजपा की सीटें तो बढ़ेंगी लेकिन इतनी नहीं कि एनडीए को बहुमत मिल जाए. सरकार बनाने के लिए एनडीए से बाहर दूसरे दलों की जरूरत पड़ेगी. ये दूसरे दल चंद्रबाबू नायडू की टीडीपी हो सकती है, जयललिता की अन्नाद्रमुक और पटनायक की बीजेडी. इन पार्टियों की समस्या है कि ये कांग्रेस के साथ नहीं जा सकतीं और खुद को भाजपा के एजेंडे का विरोधी भी बताती हैं. भाजपा को इन दलों का साथ उनकी ही शर्तों पर मिलेगा. ये दल भाजपा को तभी तक साथ देंगे जब तक इनकी सेकुलर छवि खराब नहीं हो रही हो. यह भी संभव है कि एनडीए के बाहर की पार्टियां आडवाणी के नाम पर राजी न हों. हो सकता है कि जयललिता, नायडू और पटनायक शर्त रख दें कि वे भाजपा को तभी समर्थन देंगे जब प्रधानमंत्री के पद पर आडवाणी की जगह कोई और उदारवादी नेता हो. अगर ऐसा होता है तो आडवाणी पार्टी में अकेले पड़ जाएंगे. भारतीय जनता पार्टी को किसी अन्य नाम पर विचार करना होगा. वे नाम जसवंत सिंह हो सकते हैं या मुरली मनोहर जोशी. इन दोनों नेताओं के रिश्ते आडवाणी के साथ ज़्यादा मधुर नहीं हैं. फिलहाल दोनों नेताओं को जेटली एंड कंपनी ने हाशिए पर कर दिया है. यही वजह है कि प्रधानमंत्री कौन बनेगा का जवाब तल-राशती भाजपा में तूफान है.

इस बात के संकेत लखनऊ में राजनाथ सिंह ने दिए. एक अंग्रेजी चैनल के रिपोर्टर ने जब सवाल किया कि अरुण जेटली और अरुण शौरी जैसे नेता मोदी को भावी प्रधानमंत्री के रूप में देख रहे हैं, लेकिन आपने इस मामले में कोई बयान नहीं दिया, तो राजनाथ सिंह नाराज़ हो कर बीच इंटरव्यू से उठ गए. हाथों से इशारा कर कहने लगे कि क्या बकवास पूछ रहे हो. ऐसा कुछ नहीं होने वाला है. राजनाथ सिंह एक अनुभवी राजनेता हैं, भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष हैं. रिपोर्टर के सवाल पर कह सकते थे कि भारतीय जनता पार्टी में नेताओं की कमी नहीं है या इनकी पार्टी में सामूहिक नेतृत्व की परंपरा है आदि-आदि. लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया. पार्टी के अंदर चल रहे घमासान को सार्वजनिक कर दिया. टेलीविजन के सामने राजनाथ सिंह की मुद्रा ने साफ कर दिया कि भाजपा में तलवारें निकल चुकी हैं. कौरवों और पांडवों की रणनीति तय हो चुकी है. चुनाव के परिणाम आते ही महाभारत शुरू होने वाला है. यह महाभारत सिर्फ एक ही सूरत में टल सकता है, अगर भाजपा की सीटें घट जाएं और एनडीए को सरकार बनाने का मौका न मिले.

आडवाणी जी राजनीति के मंजे हुए खिलाड़ी हैं. भारतीय राजनीति में फिलहाल उनसे ज़्यादा अनुभवी कोई नहीं है. लेकिन पार्टी के नेताओं ने जिस तरह से उन्हें उपहास का पात्र बना दिया है, उससे वह भी खिन्न हो गए हैं. पार्टी नेताओं की बयानबाजी से इतने क्षुब्ध हो चुके हैं कि उन्हें क्या, कहां और कैसे बोलना है, यह भी समझ में नहीं आ रहा है. तीसरे चरण के मतदान के दौरान टीवी रिपोर्टरों ने जब भाजपा की उम्मीदों के बारे में पूछा तो उन्होंने सबको हैरान कर दिया. पत्रकारों को उम्मीद थी कि वह कहेंगे कि भाजपा को पूर्ण बहुमत मिलने वाला है या फिर अगली सरकार एनडीए की होने वाली है आदि-आदि. लेकिन वह कहने लगे कि भारत में मतदान को अनिवार्य बनाने के लिए क़ानून की ज़रूरत है. ज़्यादा लोग वोट दे सकें, इसके लिए चुनाव गर्मी में नहीं फरवरी के महीने में होना चाहिए. भारत एक मजबूत लोकतंत्र है. चुनाव के दिन आडवाणी जैसे अनुभवी नेता इस तरह का बयान दें, तो इसे क्या समझा जाए? क्या वह इतने परेशान हो चुके हैं कि उन्हें यही समझ में नहीं आ रहा है कि चुनाव के दौरान क्या बोलना चाहिए और किन विषयों को सेमिनारों के लिए छोड़ देना चाहिए? हो सकता है आडवाणी को शायद उनके साथ हो रहे भितरघात का आभास हो चुका हो. अपनी ही पार्टी से वह इतने तंग आ चुके हैं कि उन्होंने फ़ैसला कर लिया है कि पार्टी के संदर्भ में कोई बात नहीं करेंगे.

नरेंद्र मोदी हाल ही में इंडिया टीवी के सबसे लोकप्रिय कार्यक्रम-आप की अदातल - में नज़र आए. इसमें किसी ने मोदी से पूछा कि आपने गुजरात का विकास किया है, अब आप पूरे देश के लिए कब काम करेंगे? नरेंद्र मोदी जवाब में गोलमोल बातें करने लगे. प्रस्तोता रजत शर्मा ने अपने खास अंदाज़ में सीधा सवाल कर दिया कि जनता पूछ रही है मोदी जी कि आप देश के प्रधानमंत्री कब बनेंगे? इस पर मोदी ने जवाब दिया कि फिलहाल तो आडवाणी जी ही प्रधानमंत्री बनेंगे. इस वाक्य के खत्म होते ही वह मंद-मंद मुस्कुराए. वह जिस अंदाज से मुस्कुराए उससे यह साफ हो गया कि मोदी क्या कहना चाह रहे थे. *आप की अदालत* कार्यक्रम में मौजूद जनता भी हंस पड़ी. तालियां बजीं. उनकी हंसी को देख कर गोविंदाचार्य की बात याद आ गई. मुखौटे वाली. मोदी बिना कुछ कहे यह बता गए कि आडवाणी तो मुखौटा हैं. पार्टी का असली चेहरा तो खुद मोदी हैं.

manish.chauthiduniya@gmail.com

शीला बढ़ा रही हैं कांग्रेस की शान

अपनी धुन में मगन, जीत का तराना गुनगुनातीं, विरोधियों की चालों को मात देतीं शीला दीक्षित लगी हैं अपने मिशन विजय में. बेपनाह ऊर्जा और अदम्य उत्साह से लबालब. दिल्ली का राज-काज संभालना, मंत्रियों-अधिकारियों को निर्देश देना, नीतियां बनाना, कॉमनवेल्थ गेम्स की तैयारी का जायज़ा लेना और साथ ही केंद्र में कांग्रेस की ही सरकार बन सके, इसकी जद्दोज़हद भी करना. उन्हें इस बात की कतई परवाह नहीं कि उनका विरोध करने वाले क्या चालें चल रहे हैं. विरोधी उन पर क्या निशाने साध रहे हैं या फिर उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को लेकर किस तरह की कहानियां गढ़ी जा रही हैं.

रूबी अरुण

मैं आपके प्रदेश की बहू हूं और आपसे अपना हक़ मांगने आई हूं. मुझे पूरी उम्मीद है कि आप मुझे कतई निराश नहीं करेंगे. आप हमारा साथ देंगे और अपना क़ीमती वोट हाथ को ही देंगे.

दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित उत्तर प्रदेश में लोकसभा चुनाव के लिए प्रचार का आग़ाज़ जब इस अंदाज़ में करती हैं तो उन्हें सुनने उमड़ी लोगों की भीड़ तालियों की गड़गड़ाहट से शीला को आश्वस्त करती है. वैसे, यही शीला जब पंजाब पहुंचती हैं तो वहां की बेटी होने के नाते अपना अधिकार मांगती हैं. कहती हैं कि मायके से बेटी कभी निराश नहीं लौटती. पंजाब में भी शीला को भरपूर आश्वासन मिलता है. आशीर्वाद मिलता है. बिहार पहुंच कर शीला नीतीश कुमार की पोल खोलने का अपना राजधर्म निभाती हैं. शीला के भाषणों में मुख्य तौर पर विकास की बात होती है. दिल्ली में भी विकास कार्यों के दम पर ही शीला ने लगातार तीसरी बार फतह हासिल की. मतदाताओं के सामने शीला इसी विकास का माडल रखती हैं. शीला अपनी ख़ास इच्छा के तौर पर बताती हैं कि वह दिल्ली की सड़कों पर 120 किलोमीटर की गति से खुद कार ड्राइव करना चाहती हैं. अभी तक जिस कांग्रेस में नेहरू, इंदिरा, राजीव और सोनिया का गुणगान होता था, अब वहां शीला के नाम की भी गाथा सुनाई देने लगी है. सोनिया गांधी, राहुल और प्रियंका के बाद शीला दीक्षित कांग्रेस की स्टार प्रचारक हैं. कांग्रेस शीला की लोकप्रियता को जम कर भुना रही है. खासकर उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, पंजाब और उत्तराखंड में. विशेषकर ब्राह्मण मतदाताओं के बीच शीला की मज़बूत पकड़ बनी है. देश का ब्राह्मण अभी एक ऐसे नेता की तलाश में है जो राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान और मज़बूती से ब्राह्मणों का नेतृत्व कर सके. शीला में उसे ये तमाम खूबियां दिख रही हैं. उत्तरप्रदेश के मतदाताओं की जातीय गोलबंदी भेदने में शीला कांग्रेस के लिए बेहद मददगार हुईं.

वैसे शीला व्यक्तिगत स्तर पर जातिगत राजनीति में यक़ीन नहीं करने की बात करती हैं, बावज़ूद इसके, वह देश के ब्राह्मणों की सर्वमान्य नेता बन चुकी हैं. खासकर उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तराखंड का ब्राह्मण समुदाय शीला दीक्षित का मुरीद बन चुका है. इसी से कोशिश यही रही कि फायदा उठाने में चूक न हो. फिर भी कांग्रेस शीला का पूरा फायदा नहीं उठा पा रही. जिस तरह दिल्ली विधानसभा चुनाव में सोनिया ने पूरा भरोसा दिखाते हुए सारा दारोमदार शीला पर ही छोड़ दिया था, कमोबेश उसी तरह की जिम्मेदारी लोकसभा चुनाव में भी शीला पर छोड़नी चाहिए थी. तब शायद तस्वीर का रुख़ ही कुछ और होता. इसमें कोई संशय नहीं कि अगर कांग्रेस ने उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर और विशेषकर उत्तरप्रदेश में चुनाव प्रचार की मुकम्मल कमान दे दी होती तो हालात अभी के मुक़ाबले यक़ीनन बेहतर होते. बसपा सुप्रीमो मायावती की सोशल इंजीनियरिंग में शीला ने बखूबी सेंध लगा दी होती. मायावती के ख़ास सिपहसालार और तथाकथित ब्राह्मण नेता सतीश मिश्र का जादू शीला के करिश्मा के आगे छू-मंतर हो गया होता. शीला भले ही उम्र के 72वें साल में हैं, पर अपनी कार्यकुशलता और तरक्कीपसंद जज़्बे से ब्राह्मणों के साथ-साथ देश के युवाओं की भी रोल माडल बन चुकी हैं. देश का ब्राह्मण तबका शीला दीक्षित में पुरज़ोर यक़ीन जाहिर करने लगा है. यही हाल युवाओं का भी है. शीला ने जिस तरह दिल्ली की सूरत बदलने की कोशिश की है, उसने हरेक तबके और जाति-धर्म के लोगों को उनका कायल बना दिया है.उत्तरप्रदेश में उन्नाव के रहने वाले दिग्गज कांग्रेसी नेता उमाशंकर दीक्षित के बेटे विनोद दीक्षित की पत्नी शीला दीक्षित लागों के मिजाज़ को भांपने में माहिर हैं. वे काम करना जानती हैं. उन्हें पता है कि सिर्फ बातें बनाकर सियासत की रोटी नहीं खाई जा सकती. पिछले कुछ वर्षों में उन्होंने अपनी अथक कोशिशों से दिल्ली को प्रदूषण रहित और रहने लायक शहर बना दिया. राजनीति में रहते हुए भी शीला ने अपनी जीवंतता और मासूमियत बचा कर रखी है. देवानंद, शाहरुख़ और सैफ अली खान की प्रशंसिका शीला बड़ी सहजता से स्वीकार करती हैं कि कॉलेज के दिनों में उन्हें देवानंद पर क्रश हो गया था. देवानंद की फिल्म ज्वेल थीफ और गाइड को शीला ने 10-10 बार देखा है. शास्त्रीय संगीत से लेकर पॉप संगीत तक की दीवानी शीला के बेडरूम में हमेशा गाना चलते रहता है. खासकर रात के वक्त. वह संगीत सुनते हुए सोती हैं और जब उठती हैं तब भी

अभी तक जिस कांग्रेस में नेहरू, इंदिरा, राजीव और सोनिया का गुणगान होता था, अब वहां शीला के नाम की भी गाथा सुनाई देने लगी है. सोनिया गांधी, राहुल और प्रियंका के बाद शीला दीक्षित कांग्रेस की स्टार प्रचारक हैं. कांग्रेस शीला की लोकप्रियता को जम कर भुना रही है.

संगीत की धुन उनके इर्द-गिर्द सुरीला ताना-बाना बुने रहती है. सरलता-सहजता से भरी, कांग्रेस की जीत की उम्मीद से लबालब आज की शीला को देख कर उन लोगों को सहसा यक़ीन नहीं होता कि यह वही शीला हैं, जिन्होंने जब अपना पहला भाषण दिया था तो उनके हाथ-पैर घबराहट से कांप रहे थे. 1980 की दशक की शुरुआत में राजीव गांधी के कहने पर शीला ने राजनीति में प्रवेश लिया था. उस वक्त उनके पति विनोद दीक्षित का इंतकाल हो चुका था. चुनाव जीत जाने के बाद भी शीला को पता नहीं था कि अब आगे उन्हें करना क्या है. वक़्त और तजुर्बे ने शीला को बहुत कुछ सिखा दिया है. अपने प्रेम विवाह के बाद शीला कई मुश्किलों से दो चार हुई थीं. पंजाबी परिवार से कट्टर ब्राह्मण परिवार में बहू बनकर आने के बाद उन्होंने धीरे-धीरे सामंजस्य बिठाया और बाद में ससुराल में सबकी लाडली बन गईं. कुछ इसी तरह शीला ने खुद को राजनीति में भी फिट किया. नतीज़ा सामने है. वह आज न सिर्फ कांग्रेस की अहम ज़रूरत हैं, बल्कि जनता में भी लोकप्रिय हैं. अपनी धुन में मगन, जीत का तराना गुनगुनातीं, विरोधियों की चालों को मात देतीं, शीला दीक्षित लगी हैं अपने मिशन विजय में. बेपनाह ऊर्जा और अदम्य उत्साह से लबालब. दिल्ली का राज-काज संभालना, मंत्रियों-अधिकारियों को निर्देश देना, नीतियां बनाना, कॉमनवेल्थ गेम्स की तैयारियों का जायज़ा लेना और साथ ही साथ केंद्र में कांग्रेस की ही सरकार बन सके, इसकी जद्दोज़हद भी करना. उन्हें इस बात की कतई परवाह नहीं कि उनका विरोध करने वाले क्या चालें चल रहे हैं. विरोधी उन पर क्या निशाने साध रहे हैं या फिर उनकी राजनीतिक महत्वकांक्षाओं को लेकर क्या कहानियां गढ़ी जा रही हैं. बड़ी प्यारी-सी मुस्कान के साथ कहती हैं कि हम तो कर्म योगी हैं. हमेशा अच्छा काम करने में यक़ीन किया है. जनता ने उसका सिला भी दिया है. हम और हमारी सरकार तो सिर्फ जनता की जवाबदेह है. रही बात विरोधियों की तो उन्हें भी जवाब हम नहीं, जनता ही देगी. पर देश के लोगों के पास और भी विकल्प हैं. दूसरी तमाम पार्टियां हैं. वे अपने दावों और वादों से लोगों को लुभाने की कवायद में हैं. तमाम दोषारोपण भी हो रहे हैं . ऐसे में लोग कांग्रेस को ही क्यों चुनेंगे ? शीला कहती हैं कि कांग्रेस की सरकार ने देश की तरक्की के लिए बहुत काम किया है. लोग भी जानने-समझने लगे हैं कि उनकी बेहतरी किसमें है. कौन देश के सम्मान और हितों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील है. इसलिए वे निस्संदेह कांग्रेस को ही चुनेंगे. लोगों को पता है कि सोनिया गांधी और मनमोहन सिंह के नेतृत्व में ही इस देश की अस्मिता सुरक्षित है. इसलिए वे कांग्रेस को ही चुनेंगे. शीला किसी भी हाल में आशाओं का दामन छोड़ना नहीं चाहतीं. यह मुक़ाम शीला ने बड़ी मुश्किलों से हासिल किया. अपने विरोधियों का भारी विरोध उन्हें झेलना पड़ा. बेहद होशियारी से दुश्मनों को किनारे लगाना पड़ा. लोगों में पैठ बनाने की खातिर नींद और चैन गंवाना पड़ा. तब जाकर शीला अपनी माकूल जगह बना पाईं. अपनी पार्टी में भी उन्हें बेहद मलामत झेलनी पड़ी. कई सीनियर नेताओं ने सोनिया गांधी तक यह बात पहुंचाई कि आने वाले दिनों में शीला, गांधी परिवार के लिए मुसीबत बन सकती हैं. इसका खामियाज़ा भी शीला को उठाना पड़ा. लेकिन अब स्थितियां बदल चुकी हैं. शीला सर्वमान्य होने लगी हैं. हालांकि इम्तिहान अभी और भी हैं, फिर भी वह कांग्रेस और ब्राह्मणों की ज़रूरत तो बन ही चुकी हैं.

ruby.chauthiduniya@gmail.com

आत्ममुग्ध है कांग्रेस

विकास को नारा बनाकर विधानसभा चुनाव जीतने वाली शीला सरकार इस बात पर आत्ममुग्ध दिखती है कि उसने पूरी दिल्ली को विकास की राजधानी बना दिया. इसलिए सोनिया और शीला कह रही हैं कि विकास चाहिए तो कांग्रेस को वोट दें. इसी दम पर कांग्रेस यह दावा भी कर रही है कि यहां लोकसभा की सभी सात सीटें उनकी ही झोली में आएंगी. स्थितियां जरूर कांग्रेस के पक्ष में दिख रही हैं, पर कांग्रेस का यह दावा अतिशयोक्ति की श्रेणी में ही आएगा. ऐसा नहीं है कि दिल्ली में समस्याएं नहीं हैं. परेशानियों की भरमार है यहां, जिन्होंने लोगों का जीना मुहाल कर दिया है. नियोजित विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया गया. लिहाल पीने के पानी की कमी, बिजली, प्रदूषण, सीवर, कूड़े-कचरे, बेइंतहा अपराध, दुर्घटना, अवैध कालोनियों-झुग्गी झोपड़ी की समस्या, पार्किंग और 60 लाख से अधिक लोगों के बेघर होने जैसी अनगिनत दुश्वारियों से घिरी हुई है यह दिल्ली.

बहरहाल, 1984 के सिख दंगों के आरोपी जगदीश टाइटलर और सज्जन कुमार को सीबीआई से क्लीन चीट मिलने और उसके बाद हुए हंगामे के बाद उनकी उम्मीदवारी रद्द कर कांग्रेस ने पीड़ितों को मरहम लगाने की कोशिश ज़रूर की है. पर इससे उसका कुछ खास फायदा हो पाएगा, ऐसा फिलहाल लगता नहीं है. 1984 में कांग्रेस ने राजीव लहर में दिल्ली की सातों सीटें जीती थीं. लेकिन उसके बाद से कांग्रेस यहां वह प्रदर्शन दोहरा न सकी. 1998 में कांग्रेस ने दिल्ली विधानसभा चुनाव में भारी जीत हासिल दर्ज़ की थी, पर 1999 के लोकसभा चुनाव में उसे एक भी सीट नहीं मिल सकी. दरअसल यहां की सामाजिक बनावट भाजपा के अनुकूल बैठती है. यहां का जातिगत बंटवारा भी उसके हक में है, क्योंकि यहां अगड़ी जातियों की तादाद ज़्यादा है. पर एक जो सबसे बड़ी बात कांग्रेस के पक्ष में जाती है, वह यह दिल्ली में भले ही मध्य वर्ग का फैलाव ज़्यादा है, पर यह है मुख्यत: प्रवासियों का शहर. मज़दूर भी कम नहीं हैं यहां. दो सबसे बड़े चुनाव क्षेत्रों-पूर्वी और बाहरी दिल्ली में प्रवासी मजदूरों की संख्या काफी है. माना जाता है कि मतदाता जितना ग़रीब होगा, वह उतना ही अधिक कांग्रेस समर्थक होता है. फिर यहां दलित और मुसलमान मतदाताओं की संख्या भी कुल मतदाताओं की एक तिहाई है. और यह भी कांग्रेस के ही हक़ में है. रही बात अगड़े मतदाताओं की, तो शीला दीक्षित के कारण कांग्रेस की पैठ उनमें बढ़ी है. वैसे अबकी दिल्ली में लगातार तीसरी बार सरकार बनने का फायदा भी कांग्रेस को मिल सकता है. एक और बात है जो कांग्रेस को फायदा पहंचा सकती है, वह है भाजपा के पास मुद्दों की कमी. फिलहाल कयासों का दौर जारी है. दावों के बजाय ऊंट किस करवट बैठेगा, इसका इंतज़ार करना बेहतर होगा.

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

पहले मुख्यमंत्री तय होंगे, फिर प्रधानमंत्री

गंगेश मिश्र

इस आम चुनाव में एक नहीं, अनेक अनहोनी होनी है. पंद्रहवीं लोकसभा का चुनावी उत्सव समाप्त होने को है. लेकिन यह अब तक साफ नहीं है कि केंद्र में ऊंट किस करवट बैठेगा. दावे-प्रतिदावे हर तरफ से हैं. कांग्रेस और भाजपा देश की दो सबसे बड़ी पार्टियां हैं. चुनाव पूर्व दिख रहे दोनों गठबंधन-तीसरा और चौथा मोर्चा-दरअसल इन दो बड़ी पार्टियों के विरोध में ही वजूद में आए हैं. इसलिए दोनों मोर्चों का रुख़ चुनाव बाद बदलना तय है. नहीं तो, न कांग्रेस सरकार बना सकेगी और न भाजपा. हालांकि मोर्चे में शामिल दलों का रुख़ चुनाव बाद इससे अधिक प्रभावित होगा कि कांग्रेस और भाजपा में से कौन सरकार बनाने के करीब पहुंचती है. और, उससे भी अधिक इस पर निर्भर करेगा कि आंध्रप्रदेश व उड़ीसा में मुख्यमंत्री कौन होता है. इसलिए कि दोनों मोर्चों में शामिल पार्टियां क्षेत्रीय हैं और आंध्रप्रदेश व उड़ीसा में सरकारें इनकी मदद से ही बनेंगी, क्योंकि इन दो राज्यों की विधानसभाओं के भी त्रिशंकु रहने की आशंका जताई जा रही है. वैसे इस समय लोकसभा चुनाव के साथ इन दो राज्यों के अलावा सिक्किम में भी विधानसभा चुनाव हो रहे हैं, लेकिन लोकसभा की मात्र एक सीट होने से वहां की विधानसभा के चुनाव परिणाम केंद्रीय राजनीति को अधिक प्रभावित नहीं कर सकेंगे.

ऐसे में कहना ही होगा कि आंध्रप्रदेश और उड़ीसा की सरकारें पहले तय होंगी, केंद्र की बाद में. इन दो राज्यों में सक्रिय क्षेत्रीय दलों की दिलचस्पी मुख्यमंत्री पद में है, न कि प्रधानमंत्री के पद में. यहां ग़ौर करने की बात यह है कि इन दो राज्यों से संबंधित किसी भी क्षेत्रीय दल के नेता ने प्रधानमंत्री पद पर दावा नहीं जताया है. तेलुगु देशम पार्टी के नेता चंद्रबाबू नायडू के बारे में दबी जुबान में ऐसा कहा जाता है, लेकिन यह सच है कि वह दिल्ली में किसी भी संयुक्त सरकार में समन्वयक से अधिक बनना पसंद नहीं करेंगे. उनकी भी पहली प्राथमिकता मुख्यमंत्री की कुर्सी ही है. इसलिए कहा जा सकता है कि इस बार पहले मुख्यमंत्री तय होंगे, फिर प्रधानमंत्री. सवाल उठता है कि अगर दोनों राज्यों में गठबंधन की गिरहें वक्त पर न खुलीं तो केंद्र में सरकार का गठन किस तरह होगा? स्थानीय स्तर पर झगड़ा सुलझाए बगैर वे केंद्रीय सरकार के गठन की गुत्थी कैसे सुलझा पाएंगे? इन उलझे सवालों का जवाब बड़ा ही सुलझा होगा-दोनों राज्यों में छह महीने के लिए राष्ट्रपति शासन.

अब देखिए, उड़ीसा में सत्तारूढ़ बीजू जनता दल के नेता और मुख्यमंत्री नवीन पटनायक अभी तीसरे मोर्चे के साथ हैं. 147 सदस्यीय विधानसभा में अगर कांग्रेस को बहुमत नहीं मिला, तो फिर वह किसी भी हालत में राज्य में सरकार नहीं बना सकेगी. वह न तो भाजपा के साथ जा सकती है और न ही बीजद के साथ. राज्य में परस्पर एक-दूसरे के विरोध की राजनीति करने वाली कांग्रेस और बीजद का साथ आना नामुमकिन ही है. साथ आते ही राज्य की राजनीति में इन दो दलों में से एक का ख़ात्मा तय हो जाएगा. बिहार इसका सबसे बेहतर उदाहरण है, जहां लालू से हाथ मिलाते ही कांग्रेस की राजनीतिक मृत्यु हो गई. पिछले विधानसभा में बीजद को 61 सीटें मिली थीं. इस बार यह संख्या बढ़ने के बजाय घटने की ही आशंका है. रही बात भाजपा की, तो जिसे कांग्रेस हमेशा सांप्रदायिक कहती रही है, उससे गठजोड़ कर वह अपना भविष्य क्यों बिगाड़ेगी? ऐसे में अगर बीजद ने पिछली बार की तरह सरकार बनाने में फिर भाजपा की मदद लेती है, तो वह माकपा की अगुआई वाले तीसरे मोर्चे में कैसे रह पाएगा? वैसे में बीजद के हिस्से में आई लोकसभा की सीटें केंद्रीय स्तर पर भाजपा की अगुआई वाले एनडीए में गिनी जाएंगी. तब तीसरे मोर्चे को इस पूरे घटनाक्रम में रहे बगैर नुकसान हो जाएगा. उधर, आंध्रप्रदेश में गणित और गड़बड़ाया हुआ है. पिछली बार यानी 2004 के लोकसभा और विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को यहां काफी लाभ हुआ था. राज्य में लोकसभा की कुल 42 सीटों में से 29 उसके खाते में गई थीं. उसकी उस समय की सहयोगी पार्टी- तेलंगाना राष्ट्र समिति (टीआरएस)-ने भी पांच सीटें जीती थीं. इसी तरह 294 सदस्यीय विधानसभा के लिए हुए चुनाव में भी कांग्रेस को 185 सीटें मिली थीं. यह जीत इसलिए भी महत्वपूर्ण थी कि कांग्रेस ने 234 सीटों पर ही प्रत्याशी उतारे थे. बाकी सीटें उसने मित्र दलों के लिए छोड़ी थीं. टीडीपी 2004 में एनडीए में शामिल थी और उसे लोकसभा की मात्र पांच सीटें मिली थीं. विधानसभा चुनाव में उसकी सरकार गिर गई थी.

चिरंजीवी

चंद्रबाबू नायडू

वाई राजशेखर रेड्डी

चंद्रशेखर राव

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

नवीन पटनायक

त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति में जब तक आंध्रप्रदेश और उड़ीसा में गठबंधन सरकारों की रूपरेखा नहीं बन जाती, तब तक दिल्ली में प्रधानमंत्री के लिए कोई मोर्चा चाहकर भी किसी का समर्थन या विरोध नहीं कर पाएगा.

2009 में हालात काफी बदले हुए हैं. इसलिए कि पांच साल पहले कांग्रेस को जो सफलता मिली थी, उसमें टीआरएस और वामपंथी पार्टियों जैसी सहयोगी दलों का भी हाथ था. इस बार कांग्रेस के पुराने सभी साथी तीसरे मोर्चे में हैं. आंध्रप्रदेश में इस मोर्चे की अगुआई टीडीपी नेता और पूर्व मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू कर रहे हैं. यहां भी हालात उड़ीसा जैसे ही हैं. अगर कांग्रेस को विधानसभा की 140 से 160 के बीच सीटें नहीं मिलीं, तो उसके नेता वाईएस राजशेखर रेड्डी पांच साल के लिए दोबारा मुख्यमंत्री नहीं बन पाएंगे. और अगर तीसरे मोर्चे को 150 के आसपास सीटें मिल गईं तो चंद्रबाबू नायडू मुख्यमंत्री बनेंगे और तब दिल्ली में बनने वाली सरकार के पक्ष या विरोध में राज्य में यह मोर्चा एकजुट रहेगा. तीसरे, यह भी संभव है कि चिरंजीवी की प्रजा राज्यम पार्टी (पीआरपी) 40-60, लोकसत्ता 10-15, भाजपा 4-8 और एमआईएम लगभग चार सीटें जीतकर विधानसभा में पहुंचे. ऐसे में बहुत संभव है कि टीडीपी तीसरे मोर्चे को भूल जाए और चिरंजीवी से हाथ मिला कर सरकार बना ले. टीडीपी के इस तरह रुख़ बदलने पर दिल्ली में फायदा सीधे-सीधे एनडीए को होगा. वहां तीसरे मोर्चे को झटका लगेगा जो परोक्ष रूप से यूपीए के लिए हानिकारक ही साबित होगा. और, अगर कांग्रेस विधानसभा चुनाव में 110 से कम सीटें जीत पाती है और कोई एक पार्टी अपने बूते सरकार नहीं बना पाती है, तो टीआरएस गुल खिला सकती है. वह सरकार बनाने के लिए पिछली बार की तरह फिर कांग्रेस का समर्थन कर सकती है. यह कहते हुए कि उसे कांग्रेस के इस बार पृथक तेलंगाना राज्य बनाने के वादे पर पूरा भरोसा है.

कुल मिला कर नतीजा यही निकलता है कि त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति में जब तक आंध्रप्रदेश और उड़ीसा में गठबंधन सरकारों की रूपरेखा नहीं बन जाती, तब तक दिल्ली में कोई मोर्चा चाहकर भी प्रधानमंत्री के लिए किसी का समर्थन या विरोध नहीं कर पाएगा. इसलिए कांग्रेस हो या भाजपा, उसे सरकार बनाने की लड़ाई दिल्ली से पहले हैदराबाद और भुवनेश्वर में लड़नी पड़ेगी.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

क्या बार-बार चढ़ेगी काठ की हांडी?

कौन बनेगा प्रधानमंत्री? यह सवाल भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में नया नहीं रह गया है. इस बार आम चुनाव शुरू होने से काफी पहले से ही इस सवाल के जवाब में कई दावेदार मैदान में खम ठोकने लगे थे. इन स्वयंभू नेताओं ने अपनी काबिलियत और औचित्य के बारे में तरह-तरह की दलीलें और तर्क भी पेश किए. इस हक़ीकत को जानने के बावजूद कि फिलहाल देश के जो सामाजिक और राजनीतिक हालात हैं, उनमें कोई भी एक दल बहुमत में नहीं आ सकता. पिछली बार की तरह इस बार भी गठबंधन की ही सरकार बनेगी. बल्कि इस बार हालात ज़्यादा दुरूह रहेंगे. सरकार में छोटी-छोटी क्षेत्रीय पार्टियों की भरमार रहेगी. सबकी अपनी-अपनी महत्वाकांक्षाएं और अपने-अपने सपने होंगे. ऐसे में कोई एक व्यक्ति या नेता पूरी अवधि तक प्रधानमंत्री बन कर राज करे, ऐसा मुमकिन होता नहीं दिख रहा. आख़िर क्या होगा? तब शायद यह समझौता हो कि सरकार में शामिल हरेक पार्टी का नेता थोड़े-थोड़े दिनों के लिए प्रधानमंत्री का पद संभाले. यह अवधि एक साल की भी हो सकती है और छह-छह महीने की भी. हालांकि यह स्थिति लोकतंत्र के लिए बेहद शर्मनाक होगी. फिर भी अगर ऐसा होता है और एक राष्ट्रीय सरकार बनती है तो यह देखना निहायत दिलचस्प होगा जो भी व्यक्ति प्रधानमंत्री बनेगा, वह कौन-सा एजेंडा लागू कर सकता है. उम्मीद तो यही की जाएगी कि दल विशेष का नेता होने के नाते वह उन्हीं योजनाओं को लागू करने की कोशिश करेंगे जिसे उन्होंने अपने घोषणापत्रों में भी शामिल किया होगा. मोटे तौर पर तो हमारे सामने प्रधानमंत्री पद के दावेदारों में यूपीए के डॉ. मनमोहन सिंह, एनडीए के लालकृष्ण आडवाणी और तीसरे फ्रंट के प्रकाश करात हैं. पर इन तीनों गठबंधन के अंदर भी प्रधानमंत्री पद के कई दावेदार हैं. अगर बात यूपीए की करें तो इसमें शामिल सभी दलों के प्रमुखों की न सिर्फ यह महती इच्छा है बल्कि यह मुगालता भी है कि सिर्फ और सिर्फ वही इस देश की बागडोर संभालने की काबिलियत रखते हैं. लिहाज़ा दावेदारी भी वे उतनी ही मज़बूती से कर रहे हैं. राजद अध्यक्ष लालू प्रसाद यादव चारा घोटाले में जेल जाने के बाद से ही यह हसीन सपना देख रहे हैं. वह अभी तक कांग्रेस के साथ मजबूरी में गठबंधन धर्म का पालन कर रहे थे, पर जब बिहार में सीटों के बंटवारे के मसले पर अनबन हुई तो लालू ताल ठोक कर प्रधानमंत्री पद की दौड़ में शामिल हो गए. दूसरे सहयोगी एलजेपी सुप्रीमो रामविलास पासवान जाने कब से देश का पहला दलित प्रधानमंत्री होने का

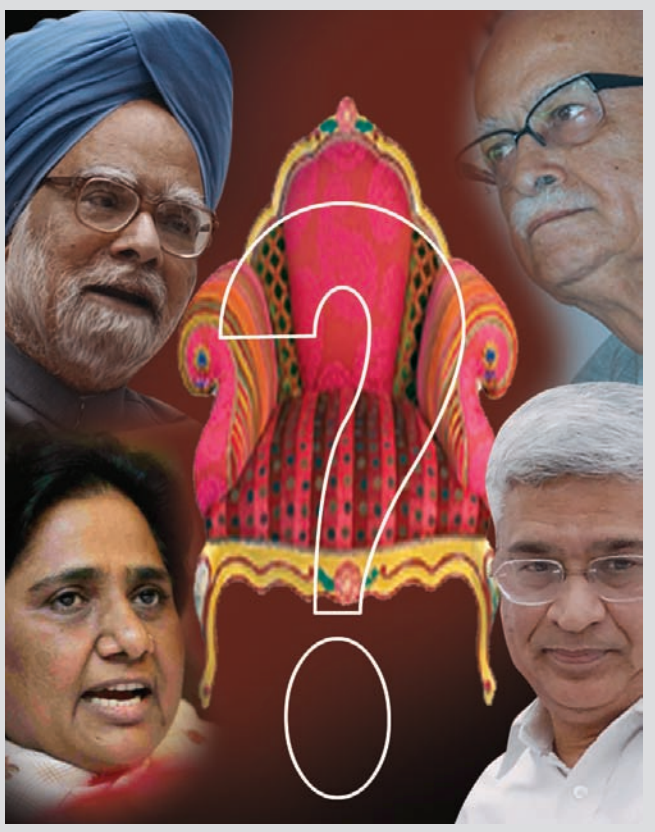

सपना संजोए बैठे हैं. मौका देख राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के सर्वेसर्वा शरद पवार ने भी ख़ुद को प्रधानमंत्री पद के लिए मज़बूती से पेश कर दिया. समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष मुलायम सिंह यादव भी लंबे समय से खुली आंखों से यह सपना संजोए बैठे हैं. एनडीए में भी यही मगज़मारी है. आडवाणी के अलावे भी यहां इस मर्ज़ के कई बीमार हैं. इनमें नीतीश कुमार का नाम सबसे ऊपर है. नवीन पटनायक और जयललिता भी कतार में हैं. यूं तो यह सपना जेएमएम प्रमुख शिबू सोरेन की आंखों में भी बसता है, पर वह जानते हैं कि यह उनके लिए दूर की कौड़ी है. तीसरे मोर्चे में वैसे तो प्रकाश करात का नाम सबसे ऊपर है, पर उनके भी प्रतिद्वंद्वी हैं. खासकर बसपा सुप्रीमो मायावती. उन्हें और उनके समर्थकों को लगता है कि मायावती से योग्य व्यक्ति इस पद के लिए तो कोई हो ही नहीं सकता. तेलुगु देशम के चंद्रबाबू नायडू भी टकटकी बांधे इस कुर्सी को निहार रहे हैं.

अब एक नज़र डालते हैं इनके एजेंडे पर. अगर मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बनते हैं तो वह क्या करेंगे? कांग्रेस ने दावा किया है कि उसने 2004 में किए गए वादों को 80 फीसदी पूरा किया है. और अबकी बार सरकार में आने पर वह भारत निर्माण, कर्ज़ माफी, बेहतर शिक्षा, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन, सूचना का अधिकार, राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना, कमज़ोर वर्गों के सशक्तीकरण जैसी योजनाओं पर काम करेगी.

उधर भाजपा ने अपने घोषणापत्र में बेहतर शासन देने के बड़े-बड़े दावे किए हैं. उसने पहला काम कांग्रेस के दावों को झुठलाने का किया है. भाजपा ने सस्ता अनाज और सुरक्षा का वादा तो किया ही है, अयोध्या में राम मंदिर बनाने जैसे विवादित मुद्दों पर भी लौटी है. तीसरे मोर्चे के अगुआ यानी प्रकाश करात की पार्टी-सीपीएम-का कहना है कि अगर वह सत्ता में आती है तो देश में स्वतंत्र विदेश नीति लागू करेगी. चुनाव आयुक्त की नियुक्ति पर कमेटी बनेगी. राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी अगर सत्ता में आती है तो वह अलग विदर्भ और तेलंगाना राज्य बनाने को मंज़ूरी देगी. साथ ही अंडमान निकोबार को अलग राज्य का दर्ज़ा देने की भी पहल करेगी. बहुजन समाज पार्टी ने अपना एजेंडा ज़बानी घोषित किया है. उसका कहना है कि वह इन चोंचलों में यक़ीन नहीं करती. पर अगर वह सत्ता में आती है तो बुंदेलखंड को तो अलग राज्य का दर्ज़ा मिलेगा ही, साथ ही अगड़ी जातियों को भी आरक्षण मिलेगा. समाजवादी पार्टी अल्पसंख्यकों के बूते अपनी हसरत पूरा करना चाहती है. लिहाज़ा उनकी बेहतरी की ख़ातिर वादे बेशुमार हैं. एक खास बात और भी है सपा के एजेंडे में. वह यह कि जब वह राज-काज संभालेगी तो अंग्रेज़ी और कंप्यूटर की पढाई बंद करा देगी.

मतलब यह कि सबकी अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग है. ग़ौर करने की बात तो यह है कि इन सबको पता है कि इनमें से किसी एक के लिए अपने बूते सरकार बनाना नामुमकिन है. फिर भी सभी काठ की हांडी में अपनी-अपनी खिचड़ी पकाने में मगन हैं.

रूबी अरुण

ruby.chauthiduniya@gmail.com

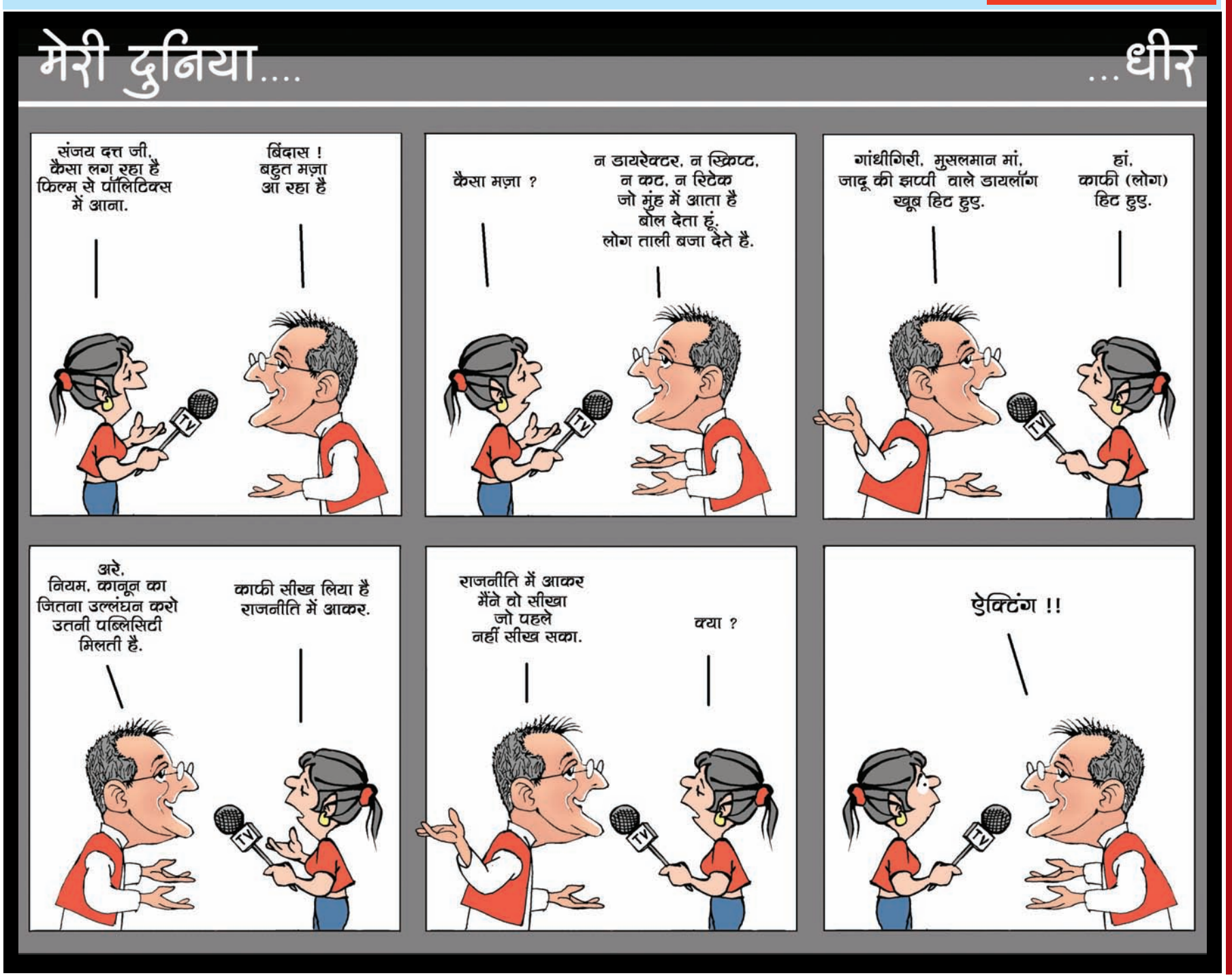

अनुशासनहीनता का महापर्व

लालू ने कथित तौर पर कहा कि संघ के लोग खुद को ब्रह्मचारी कहते हैं, लेकिन वे असल में हैं व्यभिचारी. पहले भी उन पर आडवाणी को गाली देने और वरुण को बुलडोज़र से कुचलने की बात कहने का आरोप है .

व्यालोक

लोकशाही का महापर्व यानी आम चुनाव. अगले सप्ताह तक नतीजे आ जाएंगे. नई सरकार के गठन की कवायद भी शुरू हो जाएगी. सांसदों की खरीद-बिक्री और डिनर पार्टियों में नई सरकार के गठन की कसरत भी तेज़ होगी. यही समय है कि चुनाव का लेखा-जोखा भी कर लिया जाए. पंद्रहवीं लोकसभा का चुनाव अलग रहा. कई मायनों में. अलग-अलग विषयों पर हम चर्चा भी कर चुके हैं. पर यह चुनाव सबसे अलग एक मायने में और रहा. वह मामला था-अनुशासनहीनता का. लोकशाही का सबसे बड़ा त्योहार, चुनाव जैसे अनुशासनहीनता का महापर्व बन कर रह गया. यह गिरावट चहुंओर आई. पतन इस कदर हुआ कि पतन कि कोई सीमा ही नज़र नहीं आई. लगा कि अब इससे अधिक गिरावट संभव नहीं, लेकिन हमारे नेता बिल्कुल अलग निकले. वह रोज पतन की नई इबारत लिखते रहे. ऐसी भाषा और ऐसी शब्दावली का प्रयोग हुआ कि खुद शर्मिंगदी को शर्म आ जाए. हमारे नेताओं ने एक-दूसरे को ऐसी उपाधियों से नवाजा, जिसका इस्तेमाल गली छाप गुंडे और बदमाश भी नहीं करते. और, केवल विरोधी दल के नेताओं पर ही हमला नहीं हुआ. खुद चुनाव आयोग भी हमारे माननीयों के निशाने पर आया. यहां तक कि पार्टी के अंदर भी अपमानित करने का सिलसिला चलता रहा. कई पार्टी के दिग्गज नेताओं को भी अपने ही यहां की दूसरी पंक्ति के नेताओं से अपमानित होना पड़ा.

नेताओं से मर्यादित आचरण की उम्मीद की जाती थी और शायद अब भी ऐसा ही है. लेकिन इस चुनाव में जिस तरह और जितनी बार मर्यादा की लक्ष्मणरेखा को लांघा गया, उससे यह अपेक्षा भी बेमानी ही साबित हो गई. किसी दल, किसी नेता और किसी उम्मीदवार ने राजनीति के स्तर को बचाए रखने की कोशिश नहीं की. सबसे अचरज और दुख की बात तो यह है कि नेताओं ने विज्ञान के नियम को भी झूठा साबित कर दिया. गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार कोई भी चीज़ ऊपर से नीचे की ओर आती है. इसी सिद्धांत का हवाला देते हुए हमारे अर्थशास्त्री ट्रिकल-डाउन थियरी का हवाला देते हैं. इसके मुताबिक विकास की धारा ऊपर से नीचे आती है, तो अगर ऊपरी स्तर पर विकास हो जाए, तो खुद-ब-खुद ही समाज के सभी स्तरों पर विकास की धारा आ जाएगी. इस बार चुनाव में उल्टा हुआ. धारा का प्रवाह नीचे से ऊपर हुआ. पहले जिस तरह की भाषा का इस्तेमाल छुटभैये नेता और ब्लॉक, ग्रामीण स्तर के कार्यकर्ता करते थे, अब उसी स्तर की भाषा का इस्तेमाल राष्ट्रीय दलों के नेता भी करने लगे हैं.

मामला यह हो गया है कि को बड़ छोट कहत अपराधू? भाजपा हो या कांग्रेस, राजद हो या समाजवादी पार्टी, नरेंद्र मोदी हों या राबड़ी देवी, लालू प्रसाद हों या वरुण गांधी-अनियंत्रित और अमर्यादित भावनाओं की बाढ़ में सभी पार्टियां और नेता बह गए. सबकी जुबान मानो एक साथ बहक गई, भावनाओं और आवेगों पर कोई नियंत्रण नहीं रहा और महसूस हुआ कि वाणी के संयम से तो इन नेताओं का दूर-दूर तक कोई वास्ता ही नहीं रहा.

चुनाव आयोग तो इन नेताओं को चेताने और नोटिस देने में ही परेशान रह गया. वैसे इस आम चुनाव में अगर सबसे बदजुबान नेता की प्रतियोगिता की जाए, तो निश्चित तौर पर रेल मंत्री लालू प्रसाद उस प्रतियोगिता में सर्वप्रथम होंगे. हालांकि उनकी पत्नी राबड़ी भी मिर्ची वाली जुबान बोलने में पीछे नहीं रहीं, लेकिन उनकी चर्चा आगे. यहां तो बात लालू प्रसाद की. लालू की कड़वी और तीखी जुबान को देखकर दो ही कयास लगाए जा सकते हैं. या तो वह अपनी जीत को लेकर इतने आश्वस्त हो चुके हैं कि उनके जो भी मन में आ रहा है, बोल दे रहे हैं, या फिर उनको अपनी हार का आभास हो चुका है. आने वाली हार को देखते हुए ही वह अंड-बंड बोल दे रहे हैं. शुरुआत उन्होंने दरभंगा की चुनावी रैली में 18 अप्रैल से की, जब उन्होंने लालकृष्ण आडवाणी को कथित तौर पर हरामखोर कह दिया. हालांकि मामला तूल पकड़ता, उससे पहले लालू ने उस पर लीपापोती कर दी, लेकिन अगर उन्होंने विपक्ष के वरिष्ठतम नेता और प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के बारे में ऐसी टिप्पणी की है, तो उनकी राजनीतिक समझ और मर्यादा बोध को सहज ही समझा जा सकता है. लालू यहीं पर नहीं रुके. पटना में दो मई को चुनावी सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर हमला बोल दिया. कथित तौर पर उन्होंने कहा कि संघ के लोग खुद को ब्रह्मचारी कहते हैं, लेकिन वे असल में हैं व्यभिचारी. इससे भी एक कदम आगे बढ़कर उन्होंने सुशील मोदी और नरेंद्र मोदी को साला और बहनोई बना दिया.

वैसे, लालू की अर्द्धांगिनी राबड़ी देवी भी अभद्र टिप्पणी करने में पीछे नहीं हैं. उन्होंने तो पहले चरण का चुनाव होने से पहले ही छह अप्रैल को सीधा बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और जद-यू के प्रदेश अध्यक्ष ललन सिंह को निशाना बनाते हुए बहन की गाली दे दी. राबड़ी के शब्दों पर ज़रा ग़ौर फरमाइए- ललन सिंह कौन है? वह नीतीश कुमार का साला है. और नीतीश कुमार कौन है? वह ललन सिंह का साला है. हम तो खुलेआम यह बोलेंगे. इसी वजह से दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े रहते हैं. बयानबाजी के इस स्तर को देख कर भला कौन शर्मसार न हो जाए? चुनाव आयोग ने मामले का संज्ञान लेते हुए राबड़ी के जवाब को अपर्याप्त बताया, पर दुखद यह कि चुनाव आयोग के पास इतने अधिकार ही नहीं हैं कि वह इन लोगों पर किसी तरह की कार्रवाई कर सके.

हालांकि, हमाम में सभी नंगे हैं. भद्दे बयानों के मामले में कोई भी पार्टी अछूती नहीं है. हिंदुत्व के नए पोस्टर-ब्वॉय और भाजपा के युवा नेता वरुण गांधी पर तो इसी चक्कर में रासुका भी लगा और वह जेल की यात्रा भी कर आए. उन्होंने पीलीभीत में एक सभा को संबोधित करते हुए कथित तौर पर मुसलमानों को गालियां दीं. उन्होंने मुसलमानों के लिए असम्मानजनक क-शब्द का प्रयोग किया. इसके अलावा महात्मा गांधी का भी अपमान करते हुए उन्होंने यह धमकी भी दे दी कि जो भी हिंदू हितों के साथ समझौता करेगा, उसका वह हाथ काट लेंगे. वरुण के मामले ने तुरंत ही तूल पकड़ा. चुनाव आयोग ने इसका संज्ञान लेते हुए भाजपा को सलाह दे डाली कि उसे वरुण को उम्मीदवार नहीं बनाना चाहिए. वरुण ने हालांकि तुरंत डैमेज-कंट्रोल के तहत बयान से खुद को अलग कर लिया. उनका दावा था कि कथित सीडी में उनकी आवाज़ नहीं है और उसमें छेड़छाड़ की गई है. भाजपा ने भी पहले तो खुद को उनके बयान से अलग किया, लेकिन फिर पार्टी के अंदर हिंदुत्व के हिमायतियों के दबाव में उसे वरुण गांधी के बचाव में आना पड़ा. वैसे तो, आडवाणी पार्टी को इस झमेले से अलग रखना चाहते थे, लेकिन संघ के दबाव में भाजपा के पास कोई चारा नहीं बचा कि वह वरुण को चुनाव लड़ाए. इससे और कुछ हुआ या नहीं, पर हिंदुत्व को नरेंद्र मोदी के बाद दूसरा तारनहार मिल गया. वरुण के जबाव में लालू की मिसाइल एक बार फिर गरजी. उन्होंने बयान दे दिया कि अगर वह गृह मंत्री होते तो वरुण गांधी को बुलडोज़र से कुचलवा देते. चुनाव आयोग की भौंह इस पर तननी ही थी, और लालू एक बार फिर कलाबाजी खा गए. कह दिया कि उनके बयान को तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया है. उन्होंने तो सांप्रदायिकता को कुचलने की बात कही थी. वरुण का मामला यहीं नहीं रुका. वरुण की रासुका के तहत गिरफ्तारी हुई और फिलहाल वह पेरोल पर हैं. उनकी गिरफ्तारी के बाद वरुण की मां मेनका गांधी उनके बचाव में आईं और बचाव करते-करते मायावती से बयानबाजी में उलझ गईं. उन्होंने कह दिया कि मायावती के पास दिल नहीं है, क्योंकि वह मां नहीं है. बहन जी कहां चुप रहने वाली थीं. उन्होंने भी पलटवार करते हुए कह दिया कि मदर टेरेसा भी मां नहीं थीं, लेकिन वह तो सबकी मां समान ही थीं. मायावती ने आगे बढ़कर यह भी कह दिया कि मेनका ने वरुण को अच्छे संस्कार दिए होते तो यह नौबत ही नहीं आती.

वैसे तो यह सूची अंतहीन है-हरि अनंत हरि कथा अनंता की तरह ही, लेकिन शायद ही कोई ऐसी पार्टी या नेता रहा, जिस पर किसी तरह का आरोप न लगा हो, जिसे आचार संहिता के उल्लंघन का दोषी न पाया गया हो. सपा के अध्यक्ष मुलायम सिंह यादव ने भी अपने हिसाब से सारी हदें पार कर लीं. उन्होंने तो मैनपुरी की महिला आईएएस अधिकारी एम दिलीप को ही हड़का दिया. मुलायम ने कहा कि महिला होने के नाते ही वह डीएम का सम्मान करते हैं. बेहतर होगा कि वह अपने तरीके सुधार लें, वरना मुझे अपने तरीके से काम करना भी आता है. इसके अलावा ढोली में मुलायम सिंह पर पैसे बांटने का भी आरोप लगा. हालांकि पैसे बांटने का आरोप तो भाजपा के वरिष्ठ नेता जसवंत सिंह और सपा के अबू आजमी पर भी लगा.

सबसे मज़ेदार आरोप तो कांग्रेस के पूर्वी दिल्ली से सांसद संदीप दीक्षित पर लगा. उन पर मतदाताओं को आइसक्रीम बांटने का आरोप लगा. दरअसल, उनकी सभा के बाद वहां जमा भीड़ आइसक्रीम का आनंद ले रही थी, और फंस गए बेचारे संदीप. इसके अलावा केंद्र सरकार के दो मंत्रियों को भी आचार संहिता के उल्लंघन का दोषी पाया गया. शरद पवार और पी चिदंबरम पर सरकारी मुआवजे की घोषणा और चुनाव के समय राहत कार्य शुरू करने का आरोप लगा. वहीं आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री राजशेखर रेड्डी के दामाद अनिल कुमार पर भड़काऊ भाषण देने का आरोप लगा. उन पर ईसाइयों के पक्ष में भाषण देने का आरोप था.

आपकी जानकारी के लिए बता दें कि केवल उत्तर प्रदेश में ही आचार संहिता के उल्लंघन के 1,500 मामले दर्ज हुए, तो बिहार में ऐसे 453 मामले हैं. कहना नहीं होगा कि पूरे कुएं में ही भंग पड़ गई है. जम्हूरियत का यह महापर्व जिस तरह अनुशासनहीनता के महापर्व में बदला है, उसे देखते हुए तो लोकशाही का भविष्य अंधकारमय ही लगता है.

Vyalok.chauthiduniya@gmail.com

राबड़ी देवी ने अपने पति का ही अनुसरण करते हुए बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और प्रदेश जद-यू अध्यक्ष ललन सिंह को निशाना बनाते हुए उनको बहन की गाली दे डाली.

वरुण ने पीलीभीत में एक सभा को संबोधित करते हुए कथित तौर पर मुसलमानों के लिए असम्मानजनक क-शब्द का प्रयोग किया. इसके अलावा उन्होंने हिंदू हितों के ख़िलाफ जानेवालों का हाथ काटने की धमकी दी.

मुलायम सिंह यादव ने तो मैनपुरी की महिला आईएएस अधिकारी एम दिलीप को ही हड़का दिया. मुलायम ने कहा बेहतर होगा कि डीएम साहिबा अपना तरीका सुधार लें, वरना मुझे अपने तरीके से काम करना भी आता है.

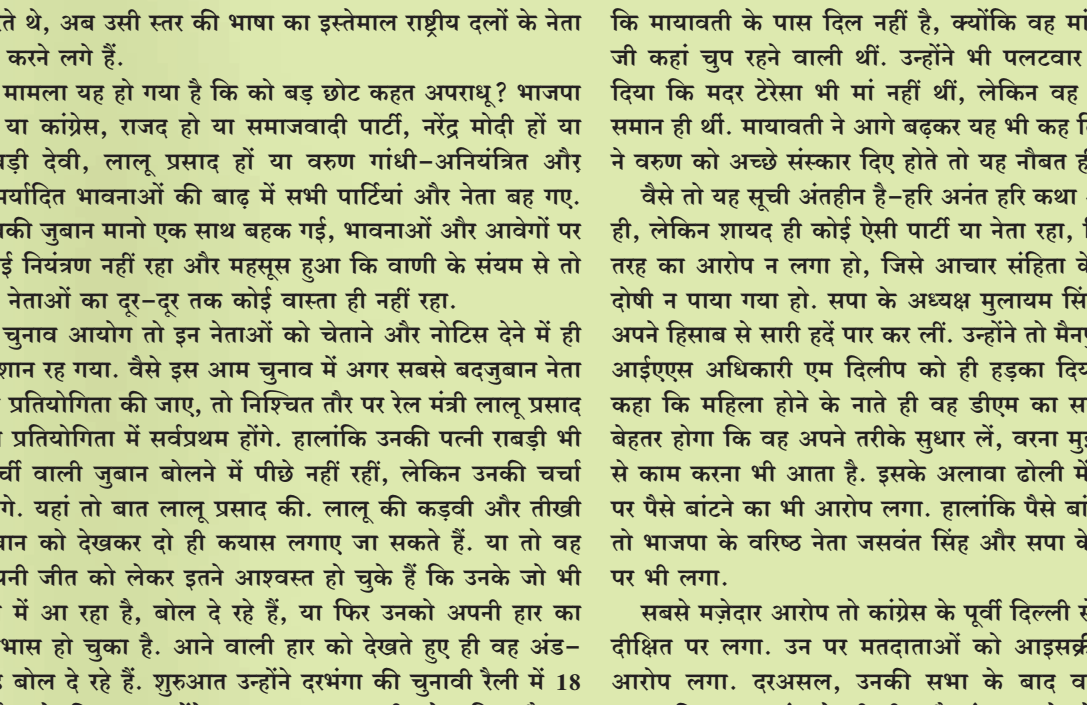

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

यूपीए सरकार में मंत्री रहे रामविलास पासवान भी तीख़ी जुबान बोलने में पीछे नहीं. नवादा में जनसभा को संबोधित करते हुए वह लालकृष्ण आडवाणी को दलाल कह कर संबोधित कर गए.

मेनका गांधी बेटे वरुण का बचाव करते-करते मायावती से उलझ गईं. उन्होंने कह दिया कि मायावती के पास दिल नहीं है, क्योंकि वह मां नहीं है. बहन जी ने पलटवार करते हुए कह दिया कि वरुण को अच्छे संस्कार नहीं मिले.

क्या कर रही हैं मुस्लिम पार्टियां?

असदुद्दीन ऊवैसी (मध्य में)

मौलाना अब्दुल नासिर मदनी

ई अहमद

मौलाना बदरूद्दीन अज़मल कासमी

सैयद शहाबुद्दीन

ए यू आसिफ

यह तथ्य बहुत ही दिलचस्प है कि इस समय देश में मुसलमानों द्वारा चलाई जा रही दो दर्जन राजनीतिक पार्टियां और एक दर्जन से अधिक राजनीतिक मोर्चे हैं. चुनाव में इन पार्टियों और मोर्चों के अलावा मुस्लिम संगठनों, संस्थाओं व व्यक्तियों की भी भूमिका रहती है. इस तथ्य के बावजूद कि मुसलमान देश की प्राय: तमाम राजनीतिक पार्टियों में कमोबेश शरीक हैं, क्षेत्रीय तौर पर ये मुस्लिम पार्टियां, मोर्चे, संगठन, संस्थान व विशिष्ट व्यक्ति चुनाव के समय कर्मठ हो जाते हैं.

इस बार के संसदीय चुनाव में इन दो दर्जन राजनीतिक पार्टियों में से अधिकतर ने अपने-अपने उम्मीदवार खड़े किए हैं. इनमें इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग (ई अहमद), ऑल इंडिया मज़लिस इत्तेहादुल मुसलमीन (असदुद्दीन ऊवैसी), इंडियन नेशनल लीग (प्रोफेसर मोहम्मद सुलेमान), मुस्लिम मज़लिस (ख़ान मोहम्मद आतीफ), पीपल्स डेमोक्रटिक पार्टी (मौलाना अब्दुल नासिर मदनी), तमिल मुस्लिम मुन्नेत्र कषगम (जवाहरुल्लाह), पीपल्स पॉपुलर फ्रंट (मौलाना बदरूद्दीन अज़मल कासमी), सेकुलर एकता पार्टी (शाहिद इख़लाख़), पीस पार्टी ऑफ़ इंडिया (डॉ. मोहम्मद अय्यूब), नेशनलिस्ट लोकतांत्रिक पार्टी (डॉ. मसूद), परचम पार्टी (सलीम पीरज़ादा), उलेमा काउंसिल (मौलाना आमीर रशादी मदनी), हमारी पार्टी (सिराजुद्दीन कुरैशी), यूनाइटेड डेमोक्रटिक फ्रंट यूपी (युसुफ कुरैशी), यूपी मोमीन कांफ्रेंस (नईमुल्लाह), बिहार मोमीन कांफ्रेंस, सेकुलर समाज पार्टी (चौधरी जियाउल्लाह), जमायत उलेमा हिंद, बैकवर्ड मुस्लिम मोर्चा (डॉ. एजाज़ अली), मुस्लिम विकास परिषद महाराष्ट्र, नवभारत निर्माण पार्टी (मोहम्मद इरशाद), बज़्मे ख्वातीन (बेगम शहनाज सिदरत) और इंसान दोस्ती पार्टी (एस एम नसीम) शामिल हैं.

ये पार्टियां कुछ स्थानों पर अकेले चुनाव लड़ रही हैं तो कुछ अन्य जगहों पर किसी न किसी मोर्चे के अंतर्गत समझौता करते हुए चुनाव में भाग ले रही हैं. इन मोर्चों में सैयद शहाबुद्दीन की अगुआई वाला ज्वाइंट कमिटी ऑफ़ मुस्लिम आर्गेनाइजेशंस फॉर इम्पावरमेंट (जेसीएमओई), सिद्दीकुल्लाह चौधरी के नेतृत्व वाला मोर्चा पीपल्स डेमोक्रटिक कांफ्रेंस मुत्तहेदा महाज़ मध्य प्रदेश, मुत्तहेदा महाज़ राजस्थान, राजस्थान फ्रंट, मुस्लिम कन्वेंशन (मौलाना इदरीस बस्तवी), एम जे पी आंध्र प्रदेश, मुत्तहेदा महाज़ गुजरात, मुत्तहेदा महाज़ झारखंड, मुस्लिम मुशावरात बोर्ड, यूपी राबेता कमिटी और पंजाब मज़लिसे इहरार उल्लेखनीय हैं.

मुसलमानों द्वारा स्थापित की गई इन पार्टियों के नामों में मुस्लिम पहचान है भी और नहीं भी है, लेकिन विशेष बात यह है कि ये तमाम पार्टियां धर्मनिरपेक्षवाद का नाम लेती हैं और लोकतंत्र में विश्वास जताती हैं और उनमें से कई ग़ैर मुस्लिमों को भी अपना उम्मीदवार बनाती हैं. तभी तो उलेमा काउंसिल के लखनऊ में उम्मीदवार प्रसिद्ध इतिहासकार अमरेश मिश्र हैं. इसी प्रकार असम के करीमगंज में एयूडीएफ के उम्मीदवार एडवोकेट राजेश माला व तेज़पुर में दीबालक्ष्मी ओरांग हैं. उल्लेखनीय है कि केरल में गत विधानसभा चुनाव में इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग और असम में गत विधानसभा चुनाव में एयूडीएफ के उम्मीदवारों में से एक-एक ग़ैर मुस्लिम थे. यही स्थिति कमोबेश अन्य मुस्लिम राजनीतिक पार्टियों की है.

इन तमाम पार्टियों में इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग, ऑल इंडिया मज़लिस इत्तेहादुल मुसलमीन और एयूडीएफ जैसी पुरानी व संगठित पार्टियां हैं. मुस्लिम लीग, अतीत में जिसके आमतौर पर दो सदस्य लोकसभा में निर्वाचित होकर आते थे, पिछली बार एक ही जीते थे और वह थे-ई अहमद, जिन्हें केंद्र में कांग्रेस से समझौते के कारण मनमोहन सिंह की सरकार में विदेश राज्य मंत्री बनाया गया. मुस्लिम लीग केरल में एक बड़ी राजनीतिक शक्ति है. उसने अतीत में एयूडीएफ और यूडीएफ दोनों के साथ मिलकर मिली-जुली सरकार अलग-अलग समय पर बना चुकी है. लोकसभा में ऑल इंडिया मज़लिस इत्तेहादुल मुसलमीन के एकमात्र सदस्य असदुद्दीन ऊवैसी हैं. राज्य की विधानसभा में भी इसका अस्तित्व है. इसी प्रकार एयूडीएफ असम में 2006 में हुए विधानसभा चुनाव के समय से एक राजनीतिक शक्ति बनकर उभरा है. यहां 14 संसदीय क्षेत्र हैं जिनमें से नौ में मुस्लिम अधिक या उल्लेखनीय संख्या में हैं. भाजपा और एजीपी गठजोड़ से बने एनडीए और कांग्रेस के बाद एयूडीएफ तीसरी राजनीतिक शक्ति है. राज्य की 31 प्रतिशत मुस्लिम जनसंख्या को लेकर इसका महत्व बहुत बढ़ जाता है. 2006 के विधानसभा चुनाव में इसने असम में नौ सीटें प्राप्त करके अपना असर दिखाया था. इस बार यह असम में नौ सीटों पर चुनाव लड़ रही है और एक सीट कोकराझाड़ में बोडो पार्टी के यूजी ब्रह्मा का समर्थन कर रही है. शेष सीटों पर इसने अपने उम्मीदवार खड़े नहीं किए हैं. ज्ञात रहे कि इसके सुप्रीमो मौलाना बदरूद्दीन अज़मल कासमी दो संसदीय क्षेत्रों-सिलचर व धुबरी, और उनके भाई सिराजुद्दीन अज़मल भी दो क्षेत्रों-नौगांव व कालियाबोर-से भाग्य आज़मा रहे हैं. उपरोक्त दो ग़ैर मुस्लिम उम्मीदवारों के करीमगंज व तेज़पुर से चुनाव लड़ने के अलावा एयूडीएफ के शेष तीन उम्मीदवार अब्दुस्समद अहमद-बारपेटा, सोनावर अली-गुवाहाटी और बदी उज़मल-मंगलाडोई में चुनाव लड़ रहे हैं.

उल्लेखनीय है कि एयूडीएफ के उभरने के पीछे बांग्लादेशियों की समस्या कारण रही थी. मौलाना बदरूद्दीन अज़मल कासमी का कहना है कि आसू का एक ही मुद्दा- बांग्लादेशियों से संबंधित-था, जिस पर हमारा कहना है कि उनकी पहचान करें, उन्हें पकड़ें व उन्हें निकाल बाहर करें. वह यह भी कहते हैं कि आसू ऐसा नहीं कर सकती है, क्योंकि इस समस्या में कोई सच्चाई है ही नहीं.

विशेषज्ञों का मानना है कि एयूडीएफ के दोनों नेता भाई मौलाना बदरूद्दीन अज़मल कासमी एवं सिराजुद्दीन अज़मल दो-दो में से एक-एक सीट तो निकाल ही सकते हैं. शेष दो अन्य उम्मीदवारों में भी मुक़ाबला कांटे का है. असम में एयूडीएफ का मुक़ाबला कांग्रेस और भाजपा दोनों से है.

उत्तरप्रदेश में एक दर्जन मुस्लिम पार्टियां हैं, पर इनमें उल्लेखनीय तीन-उलेमा काउंसिल, पीस पार्टी ऑफ़ इंडिया और मुस्लिम मज़लिस हैं. बाटला हाउस इंकाउंटर में आज़मगढ़ के दो छात्रों की हत्या पर प्रतिक्रिया करते हुए उलेमा काउंसिल इस राज्य की दस सीटों पर चुनाव लड़ रही है. उसका दावा है कि वह इनमें से आधी सीटों पर जीतेगी और आज़मगढ़ में तो उसकी सफलता पक्की ही है. विशेषज्ञों का कहना है कि यह अनुमान सही लगता है कि 65 प्रतिशत मुस्लिम वोट उसे ही मिला है. लेकिन बसपा उम्मीदवार अकबर अहमद से कांटे के मुकाबले के कारण कोई बात अंतिम रूप से नहीं कही जा सकती.

लखनऊ से उलेमा काउंसिल के उम्मीदवार अमरेश मिश्र कहते हैं कि उलेमा काउंसिल एक मजबूत राजनीतिक शक्ति बनकर सामने आई है.

डॉक्टर मंज़ूर आलम

मुज़्तबा फारूक़

इसका एक बिंदु पर आधारित एजेंडा है-इंसाफ करना. उनके अनुसार, उलेमा काउंसिल इस नारे के साथ वोटरों के बीच गई है कि एकता का राज चलेगा, हिंदु-मुस्लिम साथ चलेगा. विशेषज्ञ उलेमा काउंसिल की सफलता के बारे में बहुत अधिक अच्छी राय नहीं रखते, पर आज़मगढ़ के मुक़ाबले को कांटे का अवश्य बताते हैं. उलेमा काउंसिल के संस्थापक मौलाना आमीर रशादी मदनी हैं. पीस पार्टी ऑफ़ इंडिया, जिसे गोरखपुर के प्रसिद्ध सर्जन डॉ. मोहम्मद अय्यूब ने स्थापित किया था, के 30 उम्मीदवार मैदान में हैं, पर इसका प्रभाव विशेष रूप से मुस्लिम बहुल क्षेत्र डुमरियागंज में देखा गया. कहा जाता है कि यहां 70 प्रतिशत मुसलमानों ने पीस पार्टी ऑफ़ इंडिया के पक्ष में मत दिया, जिससे बसपा उम्मीदवार को बड़ी कठिनाई हुई. वैसे यह प्रतीत होता है कि इन दोनों पार्टियों की लड़ाई में भाजपा आगे निकल सकती है.

उत्तरप्रदेश में मुस्लिम मज़लिस 1960 के दशक में प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. अब्दुल जलील फरीदी ने बनाई थी. यह 1969 के चुनाव के समय एक राजनीतिक शक्ति बनकर सामने आ गई थी. लखनऊ स्थित मुस्लिम मज़लिस के मुख्य कार्यालय के सचिव तौसीफ़ जाफरी के अनुसार 1969 में विधानसभा चुनाव में इसके तीन उम्मीदवार कानपुर, इलाहाबाद व मुरादाबाद से जीते थे. इसी तरह 1974 में इसके तीन उम्मीदवार आज़मगढ़, गाजीपुर व फतहपुर (बाराबांकी), 1977 में जनता पार्टी के सहयोग से आठ विधानसभा उम्मीदवार और दो लोकसभा उम्मीदवार और 1984 में एक उम्मीदवार फ़जलुल बारी उतरौला (गोंडा) से निर्वाचित हुए थे. ज्ञात रहे कि इन दो सफल लोकसभा सदस्यों में से एक जुल्फिक़ारुल्लाह केंद्र में मंत्री भी बने थे. डॉ. फरीदी के 1974 में देहांत के बाद जुल्फिक़ारुल्लाह क़मर काज़मी व अन्य ने इसे बढ़ाने की कोशिश की, पर वे बहुत सफल नहीं हो पाए. इसने इस बार लखनऊ और आंवला (बरेली) से दो उम्मीदवार खड़े किए हैं. इनमें से एक लखनऊ से इसके वर्तमान अध्यक्ष ख़ान मोहम्मद आतीफ और दूसरे आंवला (बरेली) से एडवोकेट वसी अहमद हैं.

केरल में कई मुस्लिम पार्टियों ने चुनाव में भाग लिया है. इनमें इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग, इंडियन नेशनल लीग, पीपल्स पॉपुलर फ्रंट व पीपल्स डेमोक्रेटिक पार्टी उल्लेखनीय हैं. इस बार मुस्लिम लीग की दो सीटों पर जीत फिर से निश्चित मानी जा रही है. इंडियन नेशनल लीग, जिसे मुस्लिम लीग के बाबरी मस्जिद मुद्दे पर अलविदा कहने के बाद इसके अध्यक्ष इब्राहिम सुलेमान सेठ ने 1993 में कायम किया था, ने पूरे देश में तीन उम्मीदवार खड़े किए हैं. इसके अध्यक्ष प्रोफेसर मोहम्मद सुलेमान के अनुसार, केरल में इसने एलडीएफ को समर्थन दिया है. वह कहते हैं कि उनकी पार्टी थर्ड फ्रंट की समर्थक है और केंद्र में थर्ड फ्रंट की सरकार इसकी पहली पसंद होगी.

पीपल्स पॉपुलर फ्रंट प्रसिद्ध युवा नेता व पत्रकार ई अबूबकर ने बनाई थी. इसने भी दो सीटों पर चुनाव लड़ा है. केरल में इन सभी पार्टियों में मौलाना अब्दुल नासिर मदनी की पीपल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (पीडीपी) भी काफी अहम है. 1993 में इस्लामिक सेवक संघ पर पाबंदी लगाए जाने के बाद भी मौलाना मदनी सक्रिय रहे और एक बम विस्फोट में उन्हें एक पैर भी खोना पड़ा. उन्हें 1998 में हुए कोयंबटूर ब्लास्ट की साजिश में शामिल होने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया था. दस साल जेल में रहने के बाद वह तमाम आरोपों से मुक्त करार दिए गए और रिहा हो गए. वह जेल के अंदर भी रहकर एक राजनीतिक शक्ति बने हुए थे और बाहर आकर इस बार के संसदीय चुनाव में भी अहम बने हुए हैं. इनकी पीडीपी ने खुलकर एलडीएफ को समर्थन दिया है. एक अनुमान के अनुसार, उन्होंने इस बार चुनावी मुहिम के दौरान कम से कम दो सौ सभाओं को संबोधित किया. चुनाव लड़ने वाली मुस्लिम पार्टियां एवं उनका समर्थन करने वाले और उन्हें सरपरस्ती देने वाले मोर्चों के साथ-साथ अराजनीतिक मुस्लिम संगठन व विशिष्ट व्यक्ति भी चुनाव के समय बहुत अहम बन जाते हैं. ऐसे संगठनों में एक 61 वर्षीय जमाते इस्लामी हिंद है. 1985 में इसके सदस्यों पर से वोट देने की पाबंदी समाप्त हुई और 10 से 12 अक्तूबर 2008 को दिल्ली में इसकी मर्कजी मज़लिसे शूरा ने अलग से राजनीतिक पार्टी बनाने का निर्णय लिया. इससे पूर्व यह पंचायती स्तर पर चुनाव में उम्मीदवार खड़े करने का फैसला कर चुकी है. जमाते इस्लामी, जो कि मुसलमानों की राष्ट्रीय स्तर पर एक बड़ा कैडर बेस्ड संगठन है, का यह निर्णय इस लिहाज़ से बहुत ही अहम महसूस होता है. ज्ञात रहे कि जमात ने इस बार पहली दफ़ा विभिन्न मांगों पर आधारित छह पन्ने वाला घोषणापत्र जारी किया है. जमात के राजनीतिक मामलों के सचिव मुजतबा फारूक़ कहते हैं कि जहां-जहां भाजपा मैदान में थी या है, जमात ने टैक्टिकल वोटिंग की नीति का पालन किया. लेकिन जहां-जहां भाजपा का नामोनिशान नहीं था, वहां सेकुलर पार्टियों के लिए मतदान में राष्ट्र व मुस्लिम समुदाय के हित को सामने रखा. उल्लेखनीय है कि केरल में, जहां भाजपा फैक्टर नहीं है, वहां जमात ने एलडीएफ के 20 में से 18 उम्मीदवारों को समर्थन दिया और कांग्रेस के शाहनवाज़ का साथ दिया. यह बात भी बहुत मज़े की है कि जमात ने यहां मुस्लिम लीग अध्यक्ष व विदेश राज्यमंत्री ई अहमद का विरोध किया और माकपा के हमज़ा को मत देने की अपील की. मुजतबा फारूक़ के अनुसार, जमात का अंदाज़ा है कि ई अहमद जीत रहे हैं, पर सिद्धांत की बुनियाद पर उनका विरोध किया गया है. वह न्यूक्लियर डील के मामले में ई अहमद की भूमिका को इस विरोध की जड़ मानते हैं. उनका यह भी कहना है कि जमात ने पश्चिम बंगाल में भी लेफ्ट फ्रंट को पूर्ण समर्थन देना चाहा था, पर इसने उसकी नंदीग्राम व दूसरे अन्य मामलों में विवादास्पद भूमिका के कारण ऐसा नहीं किया और उसे मात्र 15 व कांग्रेस-तृणमूल कांग्रेस को 27 सीटों पर समर्थन दिया. एक सवाल के जवाब में मुजतबा फारूक़ ने कहा कि सांप्रदायिकता व साम्राज्यवाद के ख़तरे बड़े भयानक हैं. एक दूसरे बड़े मुस्लिम संगठन-ऑल इंडिया मिल्ली काउंसिल-ने भी टैक्टिकल वोटिंग की नीति पर ही इस बार अमल किया है. वैसे केरल में उसने कांग्रेस नेतृत्व वाले यूडीएफ, जिसमें मुस्लिम लीग के दो उम्मीदवार शामिल हैं, को समर्थन दिया है. इसके महासचिव डॉ. मोहम्मद मंजूर आलम के अनुसार मिल्ली काउंसिल की एक-दूसरे के विपरीत यह सोच बहुत ही दिलचस्प है.

डॉ. आलम यह भी कहते हैं कि मुस्लिम राजनीतिक पार्टियों का चुनाव के समय उभरना और फिर इसमें भाग लेना अधिकतर सेकुलर मतों के विभाजन का कारण बन जाता है, जो बहुत ही हानिकारक होता है. वह अतीत में क्षेत्रीय पार्टियों के समर्थक रहे हैं, पर जाति-बिरादरी में ही उलझे रहे. उनके अनुसार राष्ट्रीय स्तर की पार्टी के तौर पर कांग्रेस कई कमियों एवं त्रुटियों के बावजूद अन्य पार्टियों से बहुत अच्छी है.

जमीयत उलेमा हिंद एक बहुत पुराना संगठन है. स्वतंत्रता संग्राम में उसका विशेष योगदान रहा है. इसेक प्रवक्ता मौलाना अब्दुल हमीद नोमानी का कहना है कि जमीयत चुनाव के समय किसी के समर्थन या विरोध में अपील जारी नहीं करती है, पर देश में सेकुलर शक्तियों का समर्थन अवश्य करती है. जमीयत अहले हदीस हिंद ने 12 अप्रैल को अपनी शूरा (कार्यकारिणी) की विशेष सभा में यह तय किया था कि भाजपा व अन्य फासीवादी तत्वों के मुक़ाबले सेकुलर पार्टियों के पक्ष में मत दिया जाए.

जेसीएमओई के अध्यक्ष सैयद शहाबुद्दीन ने पांचों चरणों में पार्टियों या उम्मीदवारों के लिए अलग-अलग सूची जारी करके अपील की. इसी प्रकार दिल्ली की जामा मस्जिद के शाही ईमाम सैयद अहमद बुखारी ने भाजपा व कांग्रेस दोनों के विरोध में अपना बिगुल बजा दिया. उन्होंने इसी दौरान कल्याण सिंह वाले मुद्दे को लेकर समाजवादी पार्टी के विरोध में भी आवाज़ उठाई.

15वीं लोकसभा के लिए चुनाव के तीन चरण के मतदान हो चुके हैं और अब सात व 13 मई को दो चरणों के मतदान होने बाकी हैं. मुस्लिम पार्टियों, मोर्चों, संगठनों व विशिष्ट व्यक्तियों को इन शेष दो चरणों में अपनी भूमिका निभाना अभी बाकी है. इन दो चरणों में दिल्ली का भी चुनाव है, जहां मुस्लिम मतदाता काफी हैं. देखना यह है कि यहां उनकी भूमिका क्या रहती है.

वैसे सैयद शहाबुद्दीन ने जेसीएमओई की ओर से दिल्ली की सात सीटों में से तीन पर मुस्लिम उम्मीदवारों को वोट देने की अपील की है. उनका कहना है कि कांग्रेस ने किसी भी मुस्लिम को दिल्ली में टिकट नहीं दिया है. इसलिए दिल्ली की तीन सीटों पर जेसीएमओई द्वारा उसके ख़िलाफ़ वोट की अपील करने का निर्णय लिया गया है. वैसे जेसीएमओई के घटक मिल्ली काउंसिल के डॉ. मंजूर आलम का कहना है कि इस निर्णय की सूचना मिल्ली काउंसिल को नहीं है. इसलिए वह जेसीएमओई से अपना नाम वापस लेती है. ज्ञात रहे कि जमीयत उलेमा हिंद ने अपना नाम पहले ही वापस ले चुका है.

बहरहाल, मुस्लिम पार्टियों ने कुछ क्षेत्रों में मुस्लिम मतों को अपनी ओर आकर्षित अवश्य किया है. इनमें से कुछ स्थानों पर उसे सफलता मिल भी सकती है, पर अन्य स्थानों में मुस्लिम या सेकुलर मतों के विभाजन का यह कारण भी बनी है, जिससे भाजपा या अन्य मौकापरस्तों को लाभ होना निश्चित लगता है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

एम जे अकबर

कहां गए मुंबई के मतदाता?

आम तौर पर मीडिया ख़बरों का पीछा करता है. कई बार ख़बरें मीडिया का पीछा करती हैं. एकाध बार ख़बरों का सूखा भी होता है. उस वक्त मीडिया को कुछ नहीं से कुछ भी निकालना होता है. आख़िरकार, ख़बरें तो-भले ही भुला देने लायक होकर या दूसरे रूप में- मीडिया के बिना भी बनी ही रहेंगी, लेकिन मीडिया का काम बिना ख़बरों के नहीं चल सकता.

मुंबई के अनुपस्थित मतदाताओं पर मीडिया का हो-हल्ला कुछ इसी तरह की गैर-ख़बरी ख़बर थी.

2004 में मुंबई के 47 फीसदी मतदाताओं ने वोट डाले थे. 2009 में यह संख्या 44 फीसदी हो गई. पिछली बार की तुलना में कुछ ही कम. तुरंत ही हमारे आघात और भय के विशेषज्ञों ने फतवा जारी करते हुए पूछा कि आख़िर उन एक लाख मुंबईवालों का क्या हुआ, जिन्होंने मुंबई पर हमले के बाद हाथों में मोमबत्ती लेकर टेलीविजन के पर्दे पर धावा बोल दिया था, एक नई क्रांति तक लाने की धमकी दे दी थी? हमारे विद्वानों के मुताबिक वे नागरिक अपने 15 मिनट की प्रसिद्धि के बाद वापस अपने सिगरेट और शराब की पार्टियों में व्यस्त हो गए हैं. उन प्रदर्शनकारियों ने सालों से अपनी तकलीफों को सहा है. इन लोगों को वोटिंग बूथ तक लाने के लिए कुछ गंभीर रणनीतिक बातचीत करनी होगी. अगर लोकशाही की कीमत सूरज की झुलसती किरणों को झेलना है, तो क्यों नहीं हम वोट के इंटरनेट तक पहुंचने का इंतजार करते हैं? वैसे भी, यह अधिक दूर नहीं है. हम लोग सूचना प्रौद्योगिकी के बादशाह हैं. नहीं?

तथ्य हालांकि किसी दूसरे सवाल में छिपे हैं. यह धनी वर्ग की अनुपस्थिति से संबंधित नहीं है, बल्कि ग़रीबों के बहिष्कार से जुड़ा मसला है. मुंबई के अधिकतर अनुपस्थित मतदाता, या तो तनाव के कगार पर खड़ा मध्यवर्ग है या भुखमरी के कगार पर खड़ा ग़रीब है. उन्होंने पांच साल पहले भी मत नहीं डाले थे और इस बार भी नहीं डाला.

मतदान प्रतिशत में तीन फीसदी की गिरावट आसानी से समझी जा सकती है, जब तक आप मोमबत्ती लिए सितारों (सेलिब्रिटिज) की छवि से अभिभूत नहीं हैं. 2004 में मुंबई के मुसलमानों ने गुजरात दंगों की वजह से दुखी होकर और एनडीए सरकार को हराने के लिए आक्रामक तरीके से मतदान किया था. इसी वजह से औसत मतदान 47 फीसदी तक पहुंच गया था. इस बार वे कांग्रेस से उदासीन थे और भाजपा-शिवसेना से गुस्साए. कोई भी ऐसा नहीं था, जिसे वोट देने के लिए सोचा जा सके. कांग्रेस ने एक बार फिर अपने पांच साल टालमटोल में गंवा दिए और श्रीकृष्ण आयोग की रिपोर्ट पर कोई कार्रवाई नहीं की, जिसमें 92-93 के दंगों के दोषियों के नाम भी दिए गए थे. मुसलमानों की दूसरी मांग-जैसे नौकरियों में आरक्षण- के बारे में तो मजाक ही चल पड़ा है कि दूसरे समुदायों को तो नौकरियां मिलीं और मुसलमानों को मिला केवल जांच आयोग का झुनझुना.

गुस्से की वजह से 2009 में मुसलमान वोट बिखर गए हैं. वे उन राज्यों में कांग्रेस के ख़िलाफ़ हैं जहां यह सत्ता में है. जैसे महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और असम में. हालांकि, कई जगहों पर मुसलमान कांग्रेस के लिए वोट भी कर रहे हैं, जहां कांग्रेस सत्ता में नहीं है. जैसे बिहार और उत्तर प्रदेश. हालांकि 2004 की तरह की कोई एकजुटता इस बार देखने को नहीं मिल रही है. केरल में एक तबके ने वाम के अमेरिका-विरोधी रवैए का सकारात्मक समर्थन किया है, लेकिन 16 मई को ही पता चलेगा कि क्या इस रवैए ने सरकार-विरोधी हवा का रुख मोड़ा है या नहीं? बंगाल में-जहां, सबसे अधिक संख्या में अल्पसंख्यक मतदाता हैं-भी मत बंटे हुए हैं.

वैसे, उदासीनता की यह स्थिति किसी और विकल्प का रास्ता तैयार कर सकती है. सबसे लोकप्रिय उम्मीद तो अभी एक *मुस्लिम बसपा* की है. एक अध्ययन के मुताबिक मुसलमान मतदाता लगभग 74 लोकसभा सीटों पर परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं. पिछली लोकसभा में केवल 37 मुस्लिम सांसद थे. सबसे अधिक मुसलमान सांसद (46) वर्ष 1980 में थे, जब श्रीमती इंदिरा गांधी ने मुसलमानों को अपने पाले में खींच लिया था और उनको अधिक प्रतिनिधित्व भी दिया था. उसके बाद से लगातार इस संख्या में कमी ही आती गई. कांग्रेस दिल्ली के हरेक मुसलमान का वोट चाहती है, लेकिन एक भी मुस्लिम उम्मीदवार घोषित करने से हिचकती है. यह सवाल तो बड़ा कठिन ही है.

सफलता को चाहना और पाना अलग बातें हैं. लगभग दो दशकों और नेतृत्व की दो पीढ़ियों-कांशीराम और मायावती-के बाद ही दलितों का वोट हाथी के निशान से चिपक सका. मुस्लिम समुदाय के पास एकता के लिए आवश्यक समय और धैर्य भी नहीं है. लगभग 30 छोटी पार्टियां चुनावी परिदृश्य पर अपना शेयर पाने के लिए ज़ोर लगा रही हैं. इनमें तमिलनाडु की मुस्लिम मुनेत्र कषगम जैसी खांटी पार्टी भी है. केरल की मुस्लिम लीग के अलावा असम में मौलाना बदरुद्दीन अजमल का एयूडीएफ ही एकमात्र सार्थक प्रयास है, जिसने विधानसभा में नौ सीटें जीती थीं और उसकी भी अहम बात यह कि 20 और सीटों पर कांग्रेस की नींद हराम कर दी थी. इसने अपने पंख फैलाते हुए महाराष्ट्र और बंगाल में भी अपना प्रभाव जमा लिया है. हालांकि, लोगों की उत्सुकता इसमें है कि आज़मगढ़ केंद्रित उलेमा काउंसिल उत्तर प्रदेश में कैसा प्रदर्शन करती है. इस समूह ने बाटला हाउस इनकाउंटर के बाद यूपीए सरकार के न्यायिक जांच से मना करने के बाद और पुलिस द्वारा आज़मगढ़ के युवाओं का शैतान के तौर पर चित्रण करने के बाद अपना आधार ख़ासा बढ़ाया है.

इस तरह के बिखरे प्रयासों का परिणाम संभव है कि एक ही सांसद के रूप में मिले, जब भी शायद असम से जहां मौलाना अजमल उम्मीदवार बन सकते हैं. वैसे, अहम तो यह होगा कि चुनावी नतीजों के बाद कैसे गठजोड़ बनते हैं. क्या व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं पर सामूहिक कर्तव्य की जीत होगी और भारतीय राजनीति का सबसे बड़ा दोष-अविश्वास-भी दूर होगा?

कोई भी आविष्कार अगले जीनियस की प्रतीक्षा करता है. एक ऐसे कैमरे, जो मानव मस्तिष्क को पढ़ सके, की ज़रूरत है. टेलीविजन छाप राजनीति ने नेताओं के बीच की चीख़-चिल्लाहट को ही राजनीति का जामा पहना दिया है. ऐसा शायद इसलिए कि कैमरे ने हमें चौंकाने की कला भुला दी है. कोई अलग तरह का राजनेता मिलने की उम्मीद नहीं है, इसी वजह से हमें एक अलग कैमरे की ही ज़रूरत है. यह कम से कम दिमाग़ की तहों में घुसकर ख़बरें तो निकालेगा.

> **मतदान प्रतिशत में तीन फीसदी की गिरावट आसानी से समझी जा सकती है, जब तक आप मोमबत्ती लिए सितारों (सेलिब्रिटिज) की छवि से अभिभूत नहीं हैं. 2004 में मुंबई के मुसलमानों ने गुजरात दंगों की वजह से दुखी होकर और एनडीए सरकार को हराने के लिए आक्रामक तरीके से मतदान किया था. इसी वजह से औसत मतदान 47 फीसदी तक पहुंच गया था.**

feedback.chauthiduniya@gmail.com

रवि किशोर

संसद की शक्तियों में है निष्कासन का अधिकार

पंद्रहवीं लोकसभा का चुनाव अब अपने अंतिम दौर में है. सभी संभावनाओं और अपेक्षाओं के मुताबिक नतीजे इस अर्थ में खंडित ही आनेवाले हैं कि किसी भी राजनीतिक दल या गठबंधन को पूर्ण बहुमत मिलने की संभावना नहीं है. अब लड़ाई का मैदान पूरा देश न रहकर राजधानी दिल्ली में ही रह जाएगा.

यह भी अपेक्षित है कि खंडित जनादेश की हालत में एक-एक सांसद का महत्व भी काफी अधिक होनेवाला है और कोई भी गठबंधन सरकार बनाने के अपने दावे को पूरा करने के लिए कोई कसर नहीं रखेगा. सभी नज़रें रायसीना हिल्स पर लगी रहेंगी और अगर किसी एक गठबंधन को सरकार बनाने के लिए बुलाया गया तो उसको सदन में बहुमत सिद्ध करने को कहा जाएगा, जैसा पहले भी होता आया है. आने वाला यह विश्वास प्रस्ताव हमें झामुमो रिश्वत कांड की याद दिलाता है, जब पीवी नरसिंह राव प्रधानमंत्री थे. उस वक्त यह स्थापित हुआ था कि सांसदों को खासी मात्रा में धन दिया गया, ताकि उनके वोट को सुरक्षित कर अल्पमत वाली सरकार को बचाया जा सके.

1991 में दसवीं लोकसभा के लिए आम चुनाव हुआ था. इसमें कांग्रेस (आई) सबसे बड़ी पार्टी के तौर पर उभरी थी और नरसिंह राव के नेतृत्व में सरकार बनी थी. 26 जुलाई 1993 को लोकसभा में नरसिंह राव की अल्पमत सरकार के ख़िलाफ़ अविश्वास प्रस्ताव लाया गया. अविश्वास प्रस्ताव को गिराने के लिए 14 सांसदों के समर्थन की दरकार थी. 28 जुलाई 1993 को अविश्वास प्रस्ताव गिर गया. अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में 251 और विरोध में 265 सांसदों ने मत किया. झामुमो सांसदों सूरज मंडल, शिबू सोरेन, साइमन मरांडी और शैलेंद्र महतो के साथ ही जनता दल के रामलखन सिंह यादव, रोशन लाल, आनंदीचरण दास, अभय प्रताप सिंह और हाजी गुलाम मोहम्मद और अजीत सिंह की पार्टी के एक गुट ने अविश्वास प्रस्ताव के ख़िलाफ़ मतदान किया था. अजीत सिंह उस समय मतदान के वक्त अनुपस्थित रहे थे.

उसी समय राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा के रविंदर कुमार ने सीबीआई के पास एक फरवरी 1996 को शिकायत दर्ज कराई, जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि जुलाई 1993 में एक आपराधिक षड्यंत्र किया गया था, जिसके तहत ऊपर उल्लिखित सांसदों ने रिश्वत लेकर अविश्वास प्रस्ताव के ख़िलाफ़ मतदान किया था. इस शिकायत पर सीबीआई के विशेष न्यायाधीश ने रिश्वत देने और लेनेवालों के ख़िलाफ़ संज्ञान लिया. सीबीआई कोर्ट में जिन लोगों पर मामला दर्ज़ हुआ, वे दिल्ली हाईकोर्ट में राहत पाने के लिए गए. हाईकोर्ट ने याचिका ख़ारिज कर दी तो आरोपी सांसद सुप्रीम कोर्ट पहुंच गए. उनकी अपील पर पहले सुनवाई तीन सदस्यीय खंडपीठ ने की और फिर मामले को संवैधानिक खंडपीठ के हवाले कर दिया गया.

नरसिंह राव के साथ सभी अपीलकर्ताओं का मुख्य तर्क यह था कि संविधान के अनुच्छेद 105 के तहत संसद सदस्यों के ख़िलाफ़ बगैर अनुमति के किसी भी कोर्ट में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है. साथ ही उन पर भ्रष्टाचार निरोधक एक्ट 1988 के तहत भी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है. सुप्रीम कोर्ट ने बहुमत से यह फैसला दिया कि कथित तौर पर रिश्वत लेने वाले सांसदों पर संविधान के अनुच्छेद 105(2) के तहत न्यायिक कार्रवाई से छूट मिली हुई है. अविश्वास प्रस्ताव के तहत वोटिंग करने या भाषण देने के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है. हालांकि वैसे संसद सदस्यों-जिन्होंने पैसे लेकर मतदान के समय अनुपस्थित रहने का फ़ैसला किया है-को यह छूट नहीं मिलती है. जहां तक रिश्वत देने वालों का सवाल है, सुप्रीम कोर्ट ने यह व्यवस्था दी कि उनके ख़िलाफ़ सांसदों को पैसे देकर मतदान से अनुपस्थित रखवाने का मामला ज़रूर चलना चाहिए. वैसे, संसद रिश्वत देने और लेने वालों के ख़िलाफ़ विशेषाधिकार हनन और अवमानना का मामला चला सकती है.

सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी कि संविधान का अनुच्छेद 105 (1) संसद में बोलने का अधिकार देता है, जो यह बताता है कि यह स्वतंत्रता अनुच्छेद 19 में दी गई स्वतंत्रता से अलग और वहां लागू बंदिशों से मुक्त है. यह व्यवस्था इस तथ्य को स्थापित करती है कि संसद सदस्यों को सभी तरह की बंदिशों से मुक्त रखा गया है, जहां तक बहस में अपने क्षेत्र को प्रभावी ढंग से प्रतिनिधित्व देने का मामला है. कोई भी सदस्य संसद में दिए गए अपने वक्तव्य के लिए क़ानून की किसी अदालत या उसी तरह की ट्रिब्यूनल में जवाबदेह नहीं है. इसी तरह एक वोट को भी बोलने की स्वतंत्रता का ही विस्तार माना गया है, और उसे भी बोले गए शब्दों की तरह ही सुरक्षा प्राप्त है. यह सुरक्षा किसी भी न्यायिक प्रक्रिया से पूरी छूट देती है जिसका संबंध संसद में दिए गए मत या भाषण से है.

वैसे न्यायमूर्ति अग्रवाल और जस्टिस आनंद बहुमत से सहमत नहीं थे और असहमति वाले फ़ैसले में उन्होंने माना कि कोई भी संसद सदस्य अनुच्छेद 105(2) या 105(3) के तहत वह छूट नहीं पाता कि उस पर किसी फौज़दारी कोर्ट में रिश्वत लेने या देने (संसद में या किसी समिति में वोट देने के लिए) का मामला न चलाया जा सके. अनुच्छेद 105(2) का उद्देश्य एक-एक सांसदों की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए है. यह स्वतंत्रता संसदीय प्रजातंत्र की सही कार्रवाई के लिए ज़रूरी है.

जस्टिस अग्रवाल और जस्टिस आनंद ने अपने फ़ैसले में आगे यह भी कहा कि पिछले 100 सालों से ऑस्ट्रेलिया और कनाडा के विधायक अपनी विधायिका संबंधी गतिविधियों में रिश्वत लेने या देने के लिए आरोपी बनाए जा सकते हैं और ब्रिटेन के अपवाद को छोड़ दें तो राष्ट्रमंडल के अधिकतर देश विधायिका के सदस्यों की रिश्वतखोरी को आपराधिक मामला ही मानते हैं. इस बात का कोई कारण नहीं दिखता कि भारत में विधायिका को क़ानून से यह छूट क्यों मिलनी चाहिए? नरसिंह राव के मामले में दूसरा मसला जो सुप्रीम कोर्ट के सामने आया, वह यह था कि क्या संसद सदस्य सरकारी कर्मचारी हैं? सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी कि संविधान के प्रावधानों और जन-प्रतिनिधित्व कानून, 1951 के तहत यह माना गया है कि संसद की सदस्यता तब तक कार्यालयीय है, जब तक इसकी प्रकृति सार्वजनिक है और इस तरह के कार्यालय की वजह से ही कोई सदस्य सार्वजनिक प्रकृति के कार्यों को करने के लिए जवाबदेह और अधिकारी है. इसीलिए सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी कि भ्रष्टाचार निरोधक कानून, 1988 की प्रक्रिया के तहत संसद का कोई भी सदस्य एक सरकारी कर्मचारी ही है.

नरसिंह राव की सरकार पूरे कार्यकाल यानी पांच साल चली. इस तथ्य के बावजूद कि यह निस्संदेह सिद्ध हो चुका था कि वोट जुगाड़ने के लिए धन का आदान-प्रदान काफी हुआ था. सच पूछें तो यह भारतीय लोकशाही का मज़ाक ही कहा जा सकता है, जहां सदन में वोट लेने के लिए पैसे दिए-लिए जाएं और इस तरह के काम को भी संसदीय विशेषाधिकारों के तहत सुरक्षा दी गई हो और किसी भी न्यायिक कार्रवाई से छूट मिली हो. वैसे, इस तरह के मामलों में संसद को अधिकार है कि वह उचित कार्रवाई कर सके. वैसे, 2005 में जब एक टीवी चैनल ने स्टिंग ऑपरेशन के तहत 11 सांसदों को पैसे लेते हुए परदे पर दिखाया था तो संसद ने इन 11 सांसदों -10 लोकसभा के और एक राज्यसभा का-को बहिष्कृत कर दिया था. इनका व्यवहार संसद सदस्यों के तौर पर अमर्यादित और अनैतिक माना गया था. संसद के इतिहास में यह पहली बार हुआ था कि 11 सदस्यों की सदस्यता ध्वनिमत के आधार पर ख़ारिज कर दी गई थी. स्टिंग ऑपरेशन के 11 दिनों बाद इनकी सदस्यता रद्द कर दी गई थी. राज्यसभा भी लोकसभा की आचार समिति के प्रस्ताव से सहमत दिखी और उसने भी पवन कुमार बंसल समिति की रिपोर्ट की अनुशंसा को लागू किया.

अपने निष्कासन के ख़िलाफ़ कुछ निष्कासित सांसद सुप्रीम कोर्ट चले गए. उन्होंने तर्क दिया कि उनकी बात ढंग से नहीं सुनी गई और दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों को उनके ख़िलाफ़ इस तरह की कार्रवाई करने का कोई अधिकार नहीं है. इसके बावज़ूद सुप्रीम कोर्ट ने उन 11 सांसदों की सदस्यता रद्द किए जाने के फ़ैसले को ही ठीक ठहराया. सांसदों की याचिका को ठुकराते हुए कोर्ट ने व्यवस्था दी कि संसद के दोनों सदनों की व्यवस्थागत प्रक्रिया किसी भी अवैधानिकता, अतार्किकता, असंवैधानिकता या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं करती है.

मुख्य न्यायधीश वाई के सब्बरवाल की अध्यक्षता वाली पांच सदस्यीय खंडपीठ ने कहा कि संसद अपने अधिकारों का इस्तेमाल कर न केवल सदन के अंदर की घटनाओं पर कार्रवाई कर सकती है, बल्कि वह उन सभी घटनाओं पर फैसला ले सकती है, जो किसी भी तरह संसद की गरिमा को ठेस पहुंचाती हैं. कोर्ट ने यह भी बताया कि दोनों सदनों की सर्वदलीय समिति ने सभी सांसदों को बुलाकर उनकी राय इस मसले पर ली थी. न्यायमूर्ति सब्बरवाल ने अपने मुख्य फ़ैसले में कहा कि अनुच्छेद 105 के तहत संसद की शक्तियों और विशेषाधिकार में ही सदस्यों के निष्कासन का अधिकार भी शामिल है.

संसद का अपने सदस्यों का सवाल पूछने के बदले पैसा लेने पर निष्कासित करने की घटना ने एक परंपरा स्थापित की है, जिसे हरेक मामले में दोहराए जाने की ज़रूरत है. ऐसे किसी भी मामले में, जहां सदस्य किसी तरह के अनैतिक व्यवहार मे लिप्त हैं और उनका आचरण सदन की गरिमा को गिराता है. सभी राजनीतिक दलों को अपने संकीर्ण हितों से ऊपर उठकर इस संदर्भ में एक स्तर पर व्यवहार करने की आवश्यकता है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

प्रिय संपादक महोदय,

साधुवाद आपको, मेरा हर्षनाद चौथी दुनिया साप्ताहिक अख़बार के पुनप्रकार्शन पर. आपके लेखक -विश्लेषक धन्यवाद के पात्र हैं. चौथी दुनिया अख़बार की वह दुनिया है जिसके द्वारा आप सच, साफगोई, सुचिंतन और आगामी दुनिया के चारों आयाम सिरजना चाहते हैं, उन्हें सुप्रतिष्ठित करना चाहते हैं, यह एक आर्ष-यज्ञ है, विचार-यज्ञ, जिससे किसी भी विचारवान व्यक्ति को प्रसन्नता होगी.

पहले पन्ने पर संतोष भारतीय के विश्लेषण -कांग्रेस जानबूझकर हराना चाहती है, के लिए उनके दिमाग को जितनी भी दाद दी जाए, थोड़ी है. मनीष कुमार, गंगेश मिश्र, व्यालोक प्रभृति टिप्पणीकार /लेखक आपकी संपादकीय सेना के हरावल (सेना का अग्रभाग) सिद्ध हो रहे है. मेरी शुभकामना है-

कुछ कर दिखाओ ऐसा, इतिहास जगमगाए,
धरती हरी-भरी हो, आकाश मुस्कुराए.

आपका
डॉक्टर प्रभाकर पाठक
संकायाध्यक्ष मानविकी,
ल. ना.मि.विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रिय संपादक जी,

चौथी दुनिया का 3 मई का अंक देखने को मिला. बीते ज़माने की यादें ताज़ा हो गईं. खुशी की बात है कि इस बार भी इसका तेवर और कलेवर वही है. चौथी दुनिया के नियमित कॉलम-देश दुनिया, सियासी दुनिया, किसान दुनिया, चुनावी दुनिया, चौथी दुनिया, पत्रकार दुनिया, भविष्य दुनिया, साहित्य दुनिया, विविध दुनिया, खिलाड़ी दुनिया तथा जगमग दुनिया अपने आप में पूर्ण है. चित्रों का चुनाव तथा उन्हें बड़ा करके छापने का फैसला क़ाबिले तारीफ़ है. कहानियों का चुनाव सभी अख़बारों से बेहद अलग है. इसकी धमाकेदार वापसी से लोगों को पुरानी चौथी दुनिया याद आ गई है. इसका प्रचार प्रसार यहां राजस्थान में बहुत मायने रखता है. आपसे गुज़ारिश है कि इसमें राजस्थान से संबंधित सामग्री अलग से भी छापें.

आपका
लियाकत ए.भट्टी
जयपुर

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अख़बार

हम चाहते हैं कि आप अपने क्षेत्र के जागरूक संवाददाता बनें. आप अपने आसपास घट रही घटनाओं, जिनका संबंध, महिलाओं, बच्चों, किसानों, दलितों, अल्पसंख्यकों की समस्याओं उनके संघर्ष, उनपर होने वाले अत्याचार से हो, या आप अपने आसपास राजनीति, पुलिस और बाहुबलियों से जुड़ी घटनाओं पर रिपोर्ट भेजना चाहें, तो हम उनका स्वागत करेंगे. संपादकीय विभाग द्वारा चुनी गई प्रथम रिपोर्ट को तीन हजार रुपए का पुरस्कार दिया जाएगा. कृपया रिपोर्ट अपनी तस्वीर के साथ भेजें. अगर आप रिपोर्ट मेल करना चाहें, तो रिपोर्ट story.chauthiduniya@gmail.com पर भेज सकते हैं.

जब तोप मुकाबिल हो

ये हैं हम, और यह है हमारा लोकतंत्र. हमें लोकतंत्र पर गर्व है, क्योंकि लोकतंत्र हमें अपनी बात कहने का हक़ देता है, अपनी समस्याओं पर आवाज़ उठाने की अनुमति देता है और साथ ही इंसान के रूप में हमारी इज्ज़त भी करता है. लेकिन लोकतंत्र बना रहे, इसके लिए हम क्या करते हैं? हम केवल बातें करते हैं, कभी-कभी गला फाड़ते हैं, और तफरीह के लिए कभी-कभी जुलूस भी निकाल देते हैं. मुंबई जैसे कांडों पर हम बाहर निकलते हैं और तलाशते हैं कि टी.वी. कैमरे किधर हैं. हो सकता है कि अगर कैमरे वाले न रहें तो हमें सड़क पर आने की प्रेरणा ही न हो. क्या हम कैमरा आधारित लोकतंत्र की दुनिया में जा रहे हैं?

अपने देश में लोकतंत्र बचाए रखने के लिए बहुत ज़्यादा नहीं करना है. केवल उस दिन, जिस दिन मतदान होना है, मतदान केंद्र तक जाना है और मतदान करना है. लेकिन इस देश का साहब वर्ग, मध्यम वर्ग इस दिन को छुट्टी के दिन के रूप में देखता है और परिवार व दोस्तों के साथ पिकनिक मनाने चल देता है. तब लोकतंत्र बचाने की ज़िम्मेदारी क्या केवल ग़रीब, मज़दूर, किसान और वंचित वर्ग की है? वह वोट डालता जाए और ये उन लोगों को प्रभावित करते जाएं, जो जीत कर संसद में जाते हैं. दूसरे शब्दों में पैसे वाले लोग उनको धन से प्रभावित करने में लग जाएं जो ग़रीबों के वोट से चुन कर आते हैं.

आख़िर ग़रीबों को, किसानों को, मज़दूरों को, अल्पसंख्यकों को इस लोकतंत्र से मिला क्या है? इस सवाल का जवाब उन्हें देना चाहिए जो इस व्यवस्था को चलाने के ज़िम्मेदार हैं. राजनैतिक दल, नौकरशाह, न्यायपालिका से जुड़े लोग या बुद्धिजीवी क्यों नहीं सोचते कि जिस लोकतंत्र की बात वे करते हैं वह ग़रीबों या देश की आम जनता का लोकतंत्र नहीं है. पहले वे इसे अपना मानते थे और गाजे-बाजे के साथ वोट देने जाते थे, पर पिछले साठ सालों में क्या हुआ? ग़रीबों की रोजी-रोटी छिनी, उसके रोज़गार के अवसर कम हुए, किसानों की खेती नुकसानदेह हो गई, उसे उसके उत्पादन का कम से कम दाम मिला. वहीं खेती के लिए आवश्यक बीज, खाद, बिजली और कृषि यंत्र महंगे से महंगे होते गए. मज़दूरों को मज़दूरी नहीं मिलती, उन्हें रोज़गार के लिए घरों से दूर जाना पड़ता है. अल्पसंख्यक को न नौकरी में हिस्सा, न उद्योग में, न शिक्षा में, और न राजनीति में उनका न्यायपूर्ण हिस्सा मिल पाया है. नौजवान पढ़-लिख कर बेकार हो जाते हैं. बिना पढ़े-लिखे और ज़्यादा बेकारी के जाल में फंस जाते हैं.

ये सब मिल कर देश का सत्तर-अस्सी फीसदी होते हैं. इनका भरोसा इस व्यवस्था से, दूसरे शब्दों में लोकतंत्र से उठ रहा है. वे सोचते हैं कि किसी को भी वोट दें, उनकी हालत नहीं सुधरने वाली. इस निराशा का परिणाम भी बहुत खतरनाक निकल रहा है.

देश के सात सौ पचास जिलों में से लगभग एक सौ पचास जिले भारतीय संप्रभुता के अंदर एक नई संप्रभुता बना रहे हैं. हम उन्हें नक्सलवादी कहें या कुछ और, पर व्यवस्था या लोकतंत्र से निराश आम लोग, ग़रीब और वंचित उन्हें अपना समर्थन देने में हिचक नहीं रहे हैं. उन्होंने अपनी न्याय व्यवस्था, अपना कानून और अपनी मुद्रा का चलन बढ़ाने का फैसला कर लिया है. भारत के लगभग सभी किनारे के प्रदेश अशांत हैं.

कश्मीर में तो आतंकवादी कहे जा सकते हैं और उन्हें एक धर्म के दायरे में रख अपमानित भी कर रहे हैं, पर उन एक सौ पचास जिलों में तो धर्म आधारित कुछ भी नहीं है, वर्ग आधारित और ग़रीबी को आधार बनाकर लोग हथियार उठा रहे हैं. पूरा उत्तर पूर्व अशांत है, जहां सेना ही उसे भारत से जोड़ने का काम कर रही है. अगर सेना न हो तो वह हिस्सा भारत के साथ रहने को तैयार नहीं है. कुछ यही हाल कश्मीर का है. हर जगह पहले समस्या, फिर उसका समाधान न होना, लोगों में निराशा का बढ़ना और फिर उन्हें या तो उग्रवादी या अलगाववादी के तमगे का मिल जाना.

कोई प्रदेश सुखी नहीं है. पीने का पानी जब नहीं है तो सिंचाई का पानी कहां से आएगा? अर्थव्यवस्था नौजवानों की रोजी-रोटी के सवाल का उत्तर देने की जगह उसे अनदेखा कर रही है और मीडिया जिसे इन सबका विरोध करना चाहिए, स्थिति का वर्किंग पार्टनर बन गया है. आप अंदाज़ा लगाएं कि तीन हज़ार या पांच हज़ार मासिक वेतन पाने वाले कितने होंगे हमारे देश में. सौ करोड़ के मुल्क में पचास प्रतिशत से ज़्यादा तो निश्चित होंगे. चीनी तीस रुपए किलो से ज़्यादा में बिक रही है. वे चाय में चीनी की जगह नमक डाल कर पी रहे हैं, बाकी भावों के बारे में बात करना बेकार है.

क्या हम समझते हैं कि ये सारे लोग हमारी व्यवस्था से खुश हैं ? बिल्कुल नहीं. ये सब न केवल नाराज़ हैं बल्कि निराश भी हैं. उन्हें लोकतंत्र से अब शिकायत भी नहीं है, क्योंकि ये सोचते हैं कि जो आएगा वह यही करेगा. और जब नाराज़गी निराशा से मिल जाती है तो खतरनाक हो जाती है. इसी स्थिति को हम चुनावों में देख रहे हैं. अमीर छुट्टी मनाने निकल जाता है और वोट नहीं डालता, वहीं ग़रीब इसीलिए वोट डालने से हिचकता है कि उसके वोट का कोई फायदा तो होता नहीं. जो भी जीतेगा, वह उनके हितों के ख़िलाफ़ ही काम करेगा. यह स्थिति खतरनाक है और इसे हमारे लोकतंत्र को चलाने वाले नहीं समझ रहे. इन सबका विश्वास हमारे लोकतंत्र में नहीं रहा.

सोनिया गांधी, लालकृष्ण आडवाणी, प्रकाश करात, मुलायम सिंह, मायावती, जयललिता. चंद्रबाबू, प्रकाश सिंह बादल, फारूक़ अब्दुल्ला का लोकतंत्र अलग है और दलित, अल्पसंख्यक व ग़रीबों और वंचितों का लोकतंत्र अलग. इस बार कम वोट पड़ने के पीछे यही कारण हैं और अगर इन कारणों से आंख बंद करने की कोशिश करेंगे तो परिणाम का भविष्य बताने की ज़रूरत ही नहीं रहेगी. पंद्रहवीं लोकसभा में जीतने वालों की यही सबसे बड़ी परीक्षा है कि वे देश के सत्तर से अस्सी प्रतिशत लोगों का भरोसा हमारे लोकतंत्र में वापस लौटा पाते हैं या नहीं और उन्हें यह विश्वास दिला पाते हैं या नहीं कि यह लोकतंत्र उनका भी है.

भारतीय लोकतंत्र का चेहरा संसद है. इस बार संसद की परीक्षा है, और हम परीक्षा में संसद को पास होते देखना चाहेंगे, क्योंकि अगर संसद इस परीक्षा में सफल नहीं होती तो फिर बंदूक की बात करने वालों के तर्क आम जनता को सही लगने लगेंगे. उस स्थिति में लोकतंत्र केवल कुछ लोगों के ड्राइंगरूम की शोभा बनकर रह जाएगा.

> **सोनिया गांधी, लालकृष्ण आडवाणी, प्रकाश करात, मुलायम सिंह, मायावती, जयललिता. चंद्रबाबू, प्रकाश सिंह बादल, फारूक़ अब्दुल्ला का लोकतंत्र अलग है और दलित, अल्पसंख्यक व ग़रीबों और वंचितों का लोकतंत्र अलग. इस बार कम वोट पड़ने के पीछे यही कारण हैं और अगर इन कारणों से आंख बंद करने की कोशिश करेंगे तो परिणाम का भविष्य बताने की ज़रूरत ही नहीं रहेगी.**

> **अपने देश में लोकतंत्र बचाए रखने के लिए बहुत ज़्यादा नहीं करना है. केवल उस दिन, जिस दिन मतदान होना है, मतदान केंद्र तक जाना है और मतदान करना है. लेकिन इस देश का साहब वर्ग, मध्यम वर्ग इस दिन को छुट्टी के दिन के रूप में देखता है और परिवार व दोस्तों के साथ पिकनिक मनाने चल देता है. तब लोकतंत्र बचाने की ज़िम्मेदारी क्या केवल ग़रीब, मज़दूर, किसान और वंचित वर्ग की है? वह वोट डालता जाए और ये उन लोगों को प्रभावित करते जाएं, जो जीत कर संसद में जाते हैं.**

संपादक
editor.chauthiduniya@gmail.com

अरुण जेटली ऐसा क्यों कर रहे हैं?

चुनाव के इस मोड़ पर अगर आज सबसे ज़्यादा कहीं परस्पर असहयोग, अविश्वास और भ्रम की स्थिति है तो वह भाजपा में है. भाजपा के ही कई लोग मान रहे हैं कि पीएम इन वेटिंग लालकृष्ण आडवाणी के ख़िलाफ़ पार्टी में ही साज़िश रची जा रही है. भाजपा में चल रहे भितरघात का मास्टरमाइंड कौन है ? वह कौन है, जो आडवाणी के प्रधानमंत्री बनने की राह में कांटे बो रहा है?

पिछले पंद्रह दिनों में मेरी मुलाकात भारतीय जनता पार्टी के कई बड़े नेताओं से हुई. इन मुलाकातों से जो बात सामने आई, वह चौंकाने वाली है. नाम सार्वजनिक न करने की शर्त पर इन नेताओं ने बताया कि भाजपा में इस वक्त दो गुट हैं. पहला गुट आडवाणी- जेटली के नज़दीक है, तो दूसरा इनका विरोधी. पहला गुट चुनाव प्रचार में हिस्सा ले रहा है और वही यही मानकर चल रहा है कि भाजपा के नेतृत्व में ही अगली सरकार बनेगी. लेकिन भाजपा के दूसरे धड़े को लगता है कि पार्टी कुछ लोगों की निजी संपत्ति में बदल गई है और पार्टी को उसी अंदाज़ में चलाया जा रहा है.

प्रधानमंत्री के लिए भाजपा में अलग-अलग नाम के उछलने पर ज़्यादातर नेता सकते में हैं. वैसे उनका मानना है कि आडवाणी के ख़िलाफ़ इस साजिश को पार्टी में सिर्फ एक ही आदमी अंजाम दे सकता है. वह हैं-अरुण जेटली. वह भाजपा के प्रमुख रणनीतिकार हैं. चुनाव प्रचार के कमांडर इन चीफ हैं. आडवाणी उन पर भरोसा करते आए हैं, लेकिन अरुण जेटली इस बार चुनाव परिणाम के आने के बाद ख़ुद प्रधानमंत्री बनना चाहते हैं. यही वजह है कि एक रणनीति के तहत मोदी का नाम उछाला जा रहा है, जबकि यह बात भी सबको पता है कि मोदी के नाम पर किसी भी पार्टी का समर्थन मिलना नामुमकिन है. भाजपा के कुछ नेताओं ने यह भी बताया कि चुनाव जिताने और आडवाणी को प्रधानमंत्री बनाने के बहाने जेटली ने पहले खुद को पार्टी में अपरिहार्य बनाया, अब उनकी योजना आडवाणी और मोदी को इसी चुनाव में निपटाने की है. इन दोनों के निपट जाने के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इतने दबाव में आ जाएगा कि उसके पास जेटली को समर्थन देने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं बचेगा. राजनीति में अक्सर यही होता आया है. जिसका नाम आगे किया जाता है, गर्दन उसी की कटती है. देखा गया है कि ऐसे मौके पर जब भी पद को लेकर दो नामों पर विवाद होता है तो पद किसी तीसरे को मिल जाता है. ऐसा ही कुछ देवीलाल के साथ हुआ था. पिछली बार प्रणव मुखर्जी के साथ हुआ. अरुण जेटली मेकियावेली को मानने वाले राजनीतिज्ञ हैं. वह इस तरह की परिस्थितियों को भली-भांति समझते हैं.

भाजपा के एक बड़े नेता ने तो यहां तक कह दिया कि अरुण जेटली ने खुद को प्रचारित करने के लिए मीडिया में एक लॉबी भी तैयार कर रखी है. यह लॉबी चुनाव परिणाम के बाद आडवाणी, नरेंद्र मोदी या किसी और भाजपा नेता के ख़िलाफ़ मुहिम छेड़ेगी और प्रधानमंत्री पद के लिए जेटली के समर्थन में माहौल बनाएगी. इस काम के लिए दो टीवी चैनलों के प्रमुखों को पटाया गया है. कांग्रेस की भी सहमति अपने पक्ष में करने के लिए जेटली ने अपने एक मित्र और एक बड़े प्रकाशन समूह की मालकिन के जरिए कांग्रेस से तार जोड़ लिए हैं. जेटली की इस मित्र से सोनिया गांधी की भी अच्छी मित्रता है. इसके अलावा आडवाणी और नरेंद्र मोदी को रास्ते से हटाने के लिए भी अलग-अलग अख़बारों और न्यूज़ चैनलों के रिपोर्टर उनके साथ मिलकर काम कर रहे हैं. ये जेटली के निर्देश का पालन करते हैं. इनको जेटली ही बताते हैं कि कौन-सी ख़बर कब और कैसे पेश की जानी है. अरुण जेटली का अब तक का राजनीतिक सफर मीडिया के जरिए ही हुआ है. वह अख़बारों के कॉलम में लिखकर और बयान देकर, टीवी कैमरे में बाइट देकर ही राजनीति करते आए हैं. उन्हें मीडिया की शक्ति का पूरा ज्ञान है. इसलिए उन्होंने कभी चुनाव लड़ने की बात नहीं सोची, और अब इसी मीडिया की ताक़त का इस्तेमाल प्रधानमंत्री बनने के लिए कर रहे हैं. भाजपा के नेता बताते हैं कि जेटली ने पहले पार्टी को अपने कब्जे में किया और अपने विरोधियों पर हमले शुरू कर दिए हैं. वह पार्टी के अंदर उन आवाज़ों को ख़त्म कर देना चाहते हैं जो उनके ख़िलाफ़ बुलंद हो सकती है. अरुण जेटली ने सुषमा स्वराज, रविशंकर प्रसाद और सुधांशु मित्तल जैसे नेताओं को पार्टी से बाहर करने का पूरा प्लान तैयार कर लिया है. उनके निशाने पर राजीव प्रताप रूडी भी हैं, जिन्हें अटल बिहारी वाजपेयी बेटे की तरह मानते हैं. जेटली ने अपना पहला निशाना भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह पर लगाया था, लेकिन उनकी किस्मत अच्छी थी. लोकसभा चुनाव के लिए उम्मीदवारों का चयन होना था, इसलिए राजनाथ सिंह बच गए. लेकिन चुनाव के बाद जेटली के हमले से दूसरे नेता कैसे बच पाएंगे और अगला नंबर किसका आने वाला है, यही बात भाजपा के नेताओं को परेशान कर रही है.

भाजपा के इन सीनियर नेताओं ने यह भी बताया कि उन्हें इस बात की पूरी आशंका है कि बीजू जनता दल के साथ गठबंधन ख़त्म होने के पीछे भी अरुण जेटली ही हैं. उनका तर्क है कि वैसे तो पार्टी के हर बड़े फैसले पर जेटली बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते हैं, लेकिन जब नवीन पटनायक से बातचीत शुरू हुई तो उन्होंने ख़ुद को इस काम से अलग कर लिया और पूरी ज़िम्मेदारी एक पत्रकार के हाथों में दे दी. किसी भी पार्टी के साथ गठजोड़ करने से पहले यह तय करना ज़रूरी होता है कि गठबंधन कैसा होगा, सीटों का बंटवारा कैसे होगा, गठबंधन का स्वरूप उड़ीसा के विधानसभा चुनाव और लोकसभा चुनाव में कैसा होगा, बीजेडी की शर्त और मांगें क्या-क्या हैं आदि-आदि. किसी भी पार्टी के साथ गठबंधन करने के लिए राजनीतिक अनुभव की ज़रूरत होती है. भाजपा में अनुभवी नेताओं की कमी नहीं है, इसके बावजूद सीनियर नेताओं को दरकिनार कर एक पत्रकार को भुवनेश्वर भेजने से भाजपा के कई लोग नाराज़ हो गए. बीजेडी के साथ जब गठबंधन नहीं हो सका, तो भाजपा के कई नेता ये प्रश्न उठाने लगे हैं कि गठबंधन टूटने की जिम्मेदारी किसकी है ?

पार्टी के कई नेता इतने नाराज़ नज़र आए कि जेटली का नाम सुनते ही उनके कच्चे-चिट्ठे खोलने लगे. इनकी नाराज़गी की वजह यह है कि जेटली सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं और भाजपा के नेता भी हैं. कई बार अदालत में उनकी दलील ऐसी होती है, जो पार्टी लाइन के विपरीत होती है. इनका आरोप है कि जेटली ने कई ऐसे मुकदमे लड़े हैं जिनमें वह भाजपा और संघ की विचारधारा के विपरीत खड़े नज़र आते हैं. वैसे इस बात पर अरुण जेटली कई बार सफाई दे चुके हैं कि उनकी व्यावसायिकता और राजनीति अलग-अलग है.

वह कहते हैं कि कोर्ट में वह भाजपा के नेता नहीं, एक वकील होते हैं. जेटली से नाराज़ भाजपा के नेताओं का मानना है कि यह एक विरोधाभास है, इससे साबित होता है कि जेटली का संघ और पार्टी की विचारधारा में विश्वास नहीं है.

यह भी एक रहस्य है कि मुरली मरनोहर जोशी को बनारस के बाहर चुनाव प्रचार में क्यों नहीं लगाया गया. मुरली मनोहर जोशी पार्टी में आडवाणी के समकक्ष हैं. पार्टी अध्यक्ष रह चुके हैं. एनडीए की सरकार में केंद्रीय मंत्री रहे हैं. वह पार्टी और संघ के एजेंडों को लागू करने में अव्वल थे. कम से कम लखनऊ तो उन्हें प्रचार के लिए भेजा गया होता. लखनऊ में डेढ़ लाख के आसपास कुमाऊंनी हैं जो मुरली मनोहर जोशी के समर्थक हैं. ऐसे में दो तरह की बातें समझ में आती हैं. हो सकता है कि पार्टी के कुछ लोग यह चाहते हों कि लालजी टंडन हार जाएं या फिर मुरली मनोहर जोशी के राष्ट्रीय स्तर पर फिर से उभरने के दरवाजे बंद करने का प्रयास किया गया हो. भाजपा में अभी भी ऐसे कुछ नेता हैं, जो ऊपरी तौर पर पार्टी में एकता में विश्वास रखते हैं और पार्टी के अंदर चल रही बड़ी साजिश से इंकार करते हैं. लेकिन जब चुनाव के बाद पैदा होने वाली स्थितियों के बारे सोचते हैं तो उनका भी मन भारी हो जाता है.

अगर यह बात सही है कि युद्ध और राजनीति में सब कुछ जायज़ है तो इसमें किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि प्रधानमंत्री बनने के लिए कौन क्या कर रहा है. भाजपा में प्रधानमंत्री के पद को लेकर युद्ध चल रहा है. राजनीति के अखाड़े में सारे दिग्गज अपना दांव खेल रहे हैं और यह भी तय है कि एक हारेगा, तभी दूसरा जीतेगा.

> **प्रधानमंत्री के लिए भाजपा में अलग-अलग नाम के उछलने पर ज़्यादातर नेता सकते में हैं. वैसे उनका मानना है कि आडवाणी के ख़िलाफ़ इस साजिश को पार्टी में सिर्फ एक ही आदमी अंजाम दे सकता है. वह हैं-अरुण जेटली. वह भाजपा के प्रमुख राणनीतिकार हैं. चुनाव प्रचार के कमांडर इन चीफ हैं. आडवाणी उन पर भरोसा करते आए हैं, लेकिन अरुण जेटली इस बार चुनाव परिणाम के आने के बाद ख़ुद प्रधानमंत्री बनना चाहते हैं.**

मनीष कुमार
manish.chauthiduniya@gmail.com

दोराहे पर खड़ा राजस्थान का मुस्लिम मतदाता

लोकसभा के लिए राजस्थान में चल रहे चुनावों में टिकट बंटवारे से लेकर प्रचार तक में यहां के दोनों ही राष्ट्रीय दलों को जातिगत नेताओं के आगे नाक रगड़नी पड़ी. हालांकि ये नेता अंततः राजनीतिक दलों से सौदेबाजी कर जनता के भरोसे व विश्वास की कीमत वसूल चुके हैं. पिछले वर्ष भाजपा के शासनकाल में हुए गुर्जर आंदोलन में 70 से अधिक गुर्जरों को पुलिस ने गोलियों से भून दिया था. इस आंदोलन से चर्चा में आए कर्नल किरोड़ी लाल बैंसला आज उसी भाजपा की गोद में जा बैठे हैं. मीणा जाति के नेता किरोड़ी लाल मीणा भी अंत समय तक कांग्रेस से सौदेबाजी करते रहे. अंततः कांग्रेस ने उनके साथ के ज्यादातर विधायकों को अपनी तरफ मिला मीणा को ही अकेला छोड़ दिया. इन सब के बीच राज्य का एक बड़ा वोट बैंक–अल्पसंख्यक मुसलमान–चुनाव के अंतिम क्षणों तक खामोश है. न तो उसकी तरफ से कोई ऐसा नेता निकल कर आया जो उसके लिए राजनीतिक दलों से मोलभाव करे और न ही इस समुदाय के बीच से कोई ऐसी आवाज उठी जो दोनों मुख्य दलों की नीतियों का विरोध करे.

इस चुनाव में प्रदेश में कांग्रेस और बसपा को छोड़कर किसी भी राष्ट्रीय दल ने मुसलमान को टिकट नहीं दिया. प्रदेश के मुस्लिम हमेशा कांग्रेस के साथ रहे हैं, इसलिए कांग्रेस की भी मजबूरी है कि उसे खुश करने के नाम पर ही सही एक टिकट मुस्लिम उम्मीदवार को दे. सो उसने इस बार चुरू संसदीय सीट से रफीक मंडेलिया को टिकट दिया है. बसपा ने नागौर से एक पूर्व कांग्रेसी मंत्री अब्दुल अजीज को टिकट दिया है. इसके अलावा दौसा आरक्षित सीट पर कश्मीरी गुर्जर मुसलमान नेता कमर रब्बानी चेची ने पर्चा भर कर वहां मुकाबला तिकोना कर दिया है. इन तीन सीटों के अलावा प्रदेश में कहीं भी कोई मुस्लिम उम्मीदवार मुकाबले में नहीं दिखता. साढ़े पांच करोड़ की आबादी वाले इस प्रदेश में मुसलमानों की आबादी करीब साढ़े आठ फीसदी है. बावजूद इसके, चुनावों में उसे हाशिए पर ढकेला जा चुका है. इसके पीछे कुछ अहम कारण हैं, जिनकी पड़ताल की जानी जरूरी है.

ऐसा नहीं कि प्रदेश में मुसलमानों के पास कोई मुद्दा या सवाल नहीं है. हां, उनके मुद्दे पर सही ढंग से आवाज़ उठाने वाले नेताओं या संगठनों की कमी जरूर है. प्रदेश की द्विध्रुवीय राजनीति में यह विकल्पहीनता ही इस समुदाय को मजबूर करती है कि वह कांग्रेस या भाजपा में से किसी एक को चुन ले. ऐसे में मुसलमानों के सामने कांग्रेस के साथ जाने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता. इस लोकसभा चुनाव से भी ठीक पहले राज्य के 22 मुस्लिम संगठनों ने राजस्थान मुस्लिम फोरम के बैनर तले, संघ व उसकी सहोदर शक्तिओं को सत्ता से दूर रखने के नाम पर कांग्रेस का साथ देने की घोषणा की है. हालांकि कांग्रेस को समर्थन देने की मजबूरी को इस फोरम के नेता भी छुपा नहीं सके. फोरम के संयोजक कारी मोइनुद्दीन इसे मुश्किल लेकिन राष्ट्रहित का निर्णय बताते हैं. उनका कहना है कि प्रदेश में सांप्रदायिक तत्वों को सत्ता से दूर रखने का और कोई विकल्प नहीं है. कांग्रेस को बिना शर्त समर्थन देने पर अपनी सफाई में कारी कहते हैं कि कांग्रेस को चुनने के पीछे कोई विशेष लगाव या कांग्रेस अच्छी पार्टी है जैसी कोई बात नहीं. हमारी कांग्रेस से भी लाखों शिकायतें हैं. लेकिन इसके अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं हो सकता, इसलिए कांग्रेस को समर्थन देना एक राजनीतिक निर्णय है. फोरम में शामिल जमात-ए-इस्लामी हिंद के राज्य अध्यक्ष मोहम्मद सलीम इंजीनियर भी इसे *दर्दनाक खुशी* कहते हैं. यह दर्द उभरे भी क्यों न. पिछले कुछ सालों में राज्य में भाजपा व संघ की सरकार ने उनके घावों को और कुरेदा है. सलीम इंजीनियर बताते हैं कि भाजपा शासनकाल में राज्य में सौ से अधिक छोटे-बड़े दंगे हुए. इस दौरान प्रदेश में न केवल मुसलमानों को बल्कि अल्पसंख्यक ईसाई समुदाय को भी भय व असुरक्षा के साए में जीना पड़ा है. धर्म स्वातन्त्र बिल के नाम पर अल्पसंख्यक समुदाय की आज़ादी पर लगाम कसने की कोशिश की गई.

दरअसल राजस्थान में भी गुजरात की तर्ज पर भाजपा के माध्यम से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने हर तरह से अपने एजेंडे को लागू करने की कोशिश की. संघ व इससे जुड़े संगठनों ने छोटी-छोटी घटनाओं को सांप्रदायिक रूप देकर अल्पसंख्यकों पर हमला किए. फरवरी 2005 में कोटा रेलवे स्टेशन पर आंध्र प्रदेश से किसी धार्मिक सभा में भाग लेकर लौट रहे 250 ईसाइयों पर बजरंग दल, भाजपा व संघ कार्यकर्ताओं ने हमला बोल दिया. इस घटना के बाद पीड़ितों की शिकायत दर्ज करने के बजाय पुलिस ने हमलावरों की तरफ से ही जबर्दस्ती धर्म परिवर्तन कराने की कोशिश का मामला दर्ज किया. इस समय राज्य के पुलिस महानिदेशक एएस गिल के संघ से रिश्ते जगजाहिर थे. विधानसभा चुनाव से ठीक पहले नवंबर 2008 में जयपुर में श्रृंखलाबद्ध बम विस्फोटों ने रही सही कसर पूरी कर दी. इसके बाद बड़े पैमाने पर मुसलमानों की गिरफ्तारियां हुईं. जयपुर, कोटा, जोधपुर, सीकर, बूंदी व बारां जिलों से पचासों मुसलमान युवकों को एसटीएफ ने पूछताछ के नाम पर उठाया. उनके रिश्ते बांग्लादेशी संगठन हरकत-उल-जेहाद-ए-इस्लामी व इंडियन मुजाहिदीन के साथ बताए गए. पूछताछ के नाम पर उन्हें हफ्तों मानसिक प्रताड़ना दी गई. इनमें से करीब 27 युवक अभी भी जेल की सलाखों के पीछे अपना अपराध सिद्ध होने का इंतजार कर रहे हैं. जयपुर बम विस्फोट से पहले 2007 में अजमेर के ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के सामने हुए बम विस्फोट के मामले में भी पुलिस ने अपनी मानसिकता के अनुरूप कई मुस्लिम युवकों को उठाया. दो सालों तक संघ के साए में इसकी जांच चली. लेकिन कुछ दिन पहले ही यह बात सामने आई कि अजमेर विस्फोट में अभिनव भारत जैसे हिंदू आतंकवादी संगठन का हाथ था. राज्य की पुलिस ने अब इस दिशा में जांच शुरू कर दी है. संघ ने गुजरात के बाद राजस्थान को दूसरी प्रयोगशाला की तरह इस्तेमाल किया. पिछले पांच सालों में राज्य में संघ ने अपना जबर्दस्त जाल फैलाया और वनवासी कल्याण आश्रम के माध्यम से आदिवासी जातियों के बीच भी मुसलमानों व ईसाई अल्पसंख्यकों के प्रति घृणा का बीज बोया. मुसलमानों को यह सारी कसक रह-रह कर टीस देती है. इस दर्द को मुस्लिम मतदाताओं की बातों में भी महसूस किया जा सकता है. कोटा में रहने वाले राशिद वोट देने के सवाल पर कहते हैं कि *वोट देकर ही क्या होगा. कौन सी पार्टी मुसलमानों का भला चाहती है. चुनाव के समय हमें सभी अपना कहते हैं, लेकिन चुनाव बाद फिर से हमारे बेटों को आंतकवादी व पाकिस्तानी बताया जाने लगता* है. राशिद अपनी बातों में जयपुर बम धमाकों के बाद कोटा से उठाए गए लड़कों की तरफ इशारा कर रहे हैं. इन धमाकों के बाद कोटा से फर्जी गिरफ्तारियों पर यहां के मुस्लिम समुदाय ने प्रतिक्रियास्वरूप कई महीनों तक खुद को अलगाव में रखा. मुस्लिम धर्मगुरुओं ने मीडिया, विशेष कर यहां के दो प्रमुख समाचार पत्रों, का कई महीनों तक बहिष्कार किया. राज्य के अन्य जिलों में भी मुसलमानों ने कुछ इस तरह अपना विरोध दर्ज कराया. जयपुर में बांग्लादेशी मज़दूरों की गिरफ्तारियों व मुसलमानों को प्रताड़ित किए जाने पर जमात-ए-इस्लामी हिंद व अन्य संगठनों ने एक यात्रा निकालकर इस बंटवारे की राजनीति का विरोध किया. इस समय कांग्रेस का एक भी नेता खुलकर मुसलमानों के समर्थन में नहीं आया. अब जब कि चुनाव हो रहे हैं तो कांग्रेसी नेता इस बात को बेहतर तरीके से जानते हैं कि मुसलमान उन्हें छोड़कर कहीं जा नहीं सकते, इसलिए इन्हें भी मुस्लिम हितों की कोई परवाह नहीं.

राजनीतिक विश्लेषकों की मानें तो राजस्थान का मुसलमान उत्तरप्रदेश या बिहार की तरह खुशनसीब नहीं, जो कांग्रेस या भाजपा से शिकायत होने पर किसी अन्य दल के साथ जाकर राजनीति में अपनी भागीदारी दर्ज करा सके या कुछ हासिल कर सके. राजस्थान के एक मार्क्सवादी नेता शिवराम कहते हैं कि यहां की परिस्थितियां उन राज्यों से भिन्न हैं. उत्तर प्रदेश या बिहार में मुस्लिम समुदाय के पास विकल्प हैं तो इसके मूल में वहां मंडल-कमंडल आंदोलन का व्यापक प्रभाव है. इन दोनों राज्यों में बाबरी विध्वंस और उसके बाद पिछड़ी जातियों के आरक्षण आंदोलन ने न केवल मुसलमानों को बल्कि हिंदुओं के भी पिछड़े व दलित तबके को भाजपा व कांग्रेस की सांप्रदायिक व बांटने वाली राजनीति से दूर ले गई. एक तरफ इस दूरी ने ऐसी जातियों को दूसरे विकल्पों की तलाश करने पर मजबूर किया, तो दूसरी तरफ इनके और मुस्लिम समुदाय के बीच की दूरियों को भी कम कर दिया. इससे पहले तक भाजपाई व कांग्रेसी के लिए मुसलमानों व हिंदुओं की बीच की यह दूरी ही सत्ता पाने की कुंजी हुआ करती थी. इसके बाद से इन राज्यों के मुस्लिम समुदाय के साथ भले ही छोटे दलों ने धोखा किया हो, लेकिन वह अभी भी कांग्रेस या भाजपा के साथ जाने पर मजबूर नहीं है.

मीडिया बार-बार कुछ धार्मिक मुस्लिम नेताओं के माध्यम से दिखाने की कोशिश करता है कि मुसलमानों के लिए बाबरी मस्जिद निर्माण या धार्मिक संरक्षण जैसे ही मुद्दे अहम हैं. लेकिन राजस्थान में आम मुसलमानों से बात करें तो उनके लिए यह मुद्दा कतई नहीं है. इनके भी मुद्दे वही हैं जो एक हिंदू मतदाता का है, न कि किसी कठमुल्ला मुस्लिम धर्मगुरु का. एक सेल्समैन का काम कर रहे 25 वर्षीय युवा आफताब कहते हैं कि उन्हें केवल उनकी योग्यता के अनुसार रोजगार चाहिए. उनके लिए मस्जिद-मंदिर कोई मुद्दा नहीं है. बीबीए कर चुके आफताब को सेल्समैन का काम करना पड़ रहा है. वह चाहते हैं कि राज्य से बाहर दिल्ली या मुंबई जाकर किसी कंपनी में काम करें. लेकिन आतंकवादी घटनाओं के बाद धड़ाधड़ मुस्लिम युवाओं की गिरफ्तारी से उनके माता-पिता आतंकित हैं. उनकी मां शबाना बेगम कहती हैं, *हम कम पैसों में भी गुजारा कर लेंगे. लेकिन अल्लाह इसे सलामत रखे*. एक स्वयंसेवी संगठन में काम कर रहे अनवार अहमद कहते हैं कि *सरकार किसी की भी बन जाए सभी हमें पिछड़ा ही रखना चाहते हैं. यही इनकी राजनीति का आधार* है. सच्चर कमेटी रिपोर्ट का हवाला देते हुए कहते हैं कि *इसमें हमारी सारी सच्चाई साफ हो गई. लोग कहते हैं हम मदरसों में इस्लामिक शिक्षा ले रहे हैं, लेकिन कितने मुसलमानों के बच्चे मदरसे जाते हैं? सरकारें तो हमें अनपढ़ ही रखना चाहती हैं ताकि वे आगे न बढ़ सकें और उनके बारे में वह भ्रम फैलाती रहें*. हालांकि अच्छी सरकार के सवाल का उनके पास भी कोई जवाब नहीं है. वह चाहते हैं कि सरकार चाहे जिसकी बने, पिछड़े-गरीब तबकों को लाभ ज़रूर मिले. चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम.

कुल मिलाकर राज्य का मुस्लिम समुदाय दोराहे पर खड़ा है. एक रास्ता भाजपा व संघ के फासीवादी यातनागृह की ओर जा रहा है, तो दूसरा रास्ता छद्म धर्मनिरपेक्षता की चादर ओढ़े कांग्रेसी कैंप तक. यहां के मुस्लिम उजले भविष्य का सपना संजोए अंधेरे रास्ते की ओर बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं.

विजय

feedback.chauthiduniya@gmail.com

फिसल रही है पप्पू की पकड़!

तीसरे चरण के मतदान के बाद बिहार की चुनावी तस्वीर बहुत हद तक साफ हो गई है. पिछले दो चरणों में एनडीए के पक्ष में जनता का जो रुझान दिख रहा था, वह इस चरण में भी जारी रहा. लेकिन पूरा दम लगाने के बावजूद राजद-लोजपा गठबंधन को कुछ खास मिलने की उम्मीद नहीं लगती. वैसे इस चरण में कई सीटों पर कांग्रेस का पंजा मजबूत होता जरूर नज़र आया. इसके साथ ही कुछ निर्दलीय प्रत्याशियों ने भी मतदान के दिन अपनी उपस्थिति का अहसास करा दिया. इस चरण के चुनाव में सबकी नज़रें मधेपुरा में जद-यू के राष्ट्रीय अध्यक्ष शरद यादव, मुंगेर में इसी पार्टी के ललन सिंह, बांका में निर्दलीय उम्मीदवार दिग्विजय सिंह और सुपौल में बाहुबली नेता पप्पू यादव की पत्नी रंजीता रंजन पर टिकी थीं. मधेपुरा में शरद यादव के मुक़ाबले राजद के रवींद्र चरण यादव, कांग्रेस के तारानंद सदा और निर्दलीय किशोर कुमार मुन्ना मैदान में थे. यहां नामांकन के बाद शरद यादव की स्थिति ठीक नहीं थी. यादव मतदाता लालू के नाम पर लालटेन के साथ थे, तो ब्राह्मण कांग्रेस के साथ और राजपूत मतदाता किशोर कुमार मुन्ना को मदद कर रहे थे. स्थिति का आकलन कर जद-यू नेताओं ने अपनी पूरी ताक़त झोंक दी. अपनी-अपनी जाति पर पकड़ रखने वाले नेताओं को जद-यू ने यहां मोर्चे पर लगा दिया. मुख्यमंत्री ने खुद दौरों की झड़ी लगा दी. इसका असर भी पड़ा. ऐन मतदान के समय बाजी पलट गई. अति पिछड़ों के साथ राजपूत, ब्राह्मण, मुस्लिम और यादव मतदाता भी दो भागों में बंटकर शरद के पक्ष में गोलबंद हो गए. मुंगेर में जद-यू के प्रदेश अध्यक्ष राजीव रंजन सिंह उर्फ ललन सिंह और राजद उम्मीदवार रामबदन राय के बीच कड़ा मुक़ाबला हुआ. इस क्षेत्र में एक तरफ भूमिहार समाज ललन सिंह के पक्ष में गोलबंद था, तो दूसरी तरफ पिछड़ी जाति के लोग रामबदन राय के पक्ष में लाठी लेकर खड़े थे. मुस्लिम, राजपूत और ब्राह्मण समाज के मतदाता तीन भागों में विभाजित थे. कुछ कांग्रेस की तरफ तो कुछ राजद और जद-यू के पक्ष में मतदान कर रहे थे. यहां के चुनाव में बूथ मैनेजमेंट का खेल जमकर चला. पुलिस प्रशासन के ख़िलाफ़ भी काफी शिकायतें मिलीं. जिसकी लाठी उसकी भैंस की तर्ज पर कहीं जद-यू तो कहीं राजद समर्थकों ने मतदान केंद्रों पर कब्जा जमाया. मुंगेर में विकास कोई मुद्दा नहीं बन सका. इस क्षेत्र में न तो नीतीश कुमार के सुशासन का असर था और न अतिपिछड़ा व अतिदलितों के आरक्षण का. बिहार में नीतीश सरकार बनने के बाद हुए चुनावों में मुंगेर पहला लोकसभा क्षेत्र बना, जहां पिछली सरकार की तरह बूथ कब्जे की कोशिश हुई. बांका का चुनाव नीतीश कुमार के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न था. यहां से उन्हीं की पार्टी के बाग़ी उम्मीदवार दिग्विजय सिंह चुनावी मैदान में थे. दिग्विजय सिंह को हराने के लिए नीतीश कुमार ने एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया. उनकी पार्टी की ओर से हेलीकॉप्टर द्वारा 50 से अधिक चुनावी सभाएं केवल बांका लोकसभा क्षेत्र में की गईं. यहां दिग्विजय सिंह का मुक़ाबला केंद्रीय जल संसाधन राज्य मंत्री जयप्रकाश यादव और बिहार के समाज कल्याण मंत्री दामोदर रावत के साथ था. नीतीश कुमार ने मतदाताओं को तीर के पक्ष में गोलबंद करने का प्रयास किया, लेकिन लगता है कि दांव खाली ही चला गया. यहां पर अतिपिछड़ी जातियों की गोलबंदी तो जद-यू के पक्ष में हुई, पर मुस्लिम, राजपूत, ब्राह्मण व अन्य मतदाता दिग्विजय सिंह के पक्ष में गोलबंद होकर नगाड़ा बजा रहे थे. वहीं यादव व कुछ मुस्लिम मतदाता जयप्रकाश के पक्ष में भी गोलबंद थे. तिकोने मुक़ाबले में दिग्विजय सिंह का पलड़ा भारी दिख रहा है. टिकट कटने के कारण जनता की सहानुभूति के साथ-साथ राजपूत मतदाताओं की गोलबंदी से वह यहां आगे दिख रहे हैं.

कोसी क्षेत्र में पप्पू यादव की साख दांव पर लगी हुई है. उन्होंने सुपौल लोकसभा क्षेत्र से पत्नी रंजीता रंजन को कांग्रेस से, तो मां शांतिप्रिया देवी को पूर्णिया से बतौर निर्दलीय मैदानमें उतारा है. इनके अलावा मधेपुरा, किशनगंज और अररिया में कांग्रेस उम्मीदवार को विजयी बनाने की उन्होंने जिम्मेवारी ली हुई है. मतदाताओं के रुझान व पिछड़ी जाति की गोलबंदी जद-यू के पक्ष में होने के कारण कोसी क्षेत्र में पप्पू का अभेद्य किला टूटता दिख रहा है. सुपौल में उनकी पत्नी और पूर्णिया में माता जी की जीत पक्की नहीं कही जा सकती है. सुपौल में जद-यू के विश्वमोहन कुमार आगे दिखे तो पूर्णिया में भाजपा के उदय सिंह. इन क्षेत्रों में यादव और मुस्लिम मतदाताओं की गोलबंदी राजद गठबंधन के पक्ष में और अतिपिछड़ों की गोलबंदी जद-यू के पक्ष में होने के कारण पप्पू यादव के पांव के नीचे से ज़मीन खिसकती दिख रही है. किशनगंज में राजद, जद-यू और कांग्रेस में कड़ा मुक़ाबला हुआ. जद-यू उम्मीदवार महमूद अशरफ के पक्ष में अतिपिछड़ी व उच्च जाति के मतदाताओं ने मिलकर मतदान किया. राजद उम्मीदवार तस्लीमुद्दीन के पक्ष में भी यादव व मुस्लिम मतदाता गोलबंद थे. लेकिन कांग्रेस के पक्ष में मुस्लिम व ब्राह्मण मतदाताओं का रुझान अधिक रहा. लगता है कि कांग्रेस का किशनगंज में खाता खुल सकता है.

भागलपुर में यादव, कुशवाहा और अन्य पिछड़ी जातियों की गोलबंदी लालटेन के पक्ष में होने के कारण राजद उम्मीदवार शकुनी चौधरी मुक़ाबले में आगे दिख रहे हैं. कांग्रेस के सदानंद सिंह भी मुक़ाबले में हैं पर भाजपा प्रत्याशी शहनवाज हुसैन ही राजद को कड़ी टक्कर देते हुए दिखाई दे रहे हैं. खगड़िया में यादवों की गोलबंदी के बावजूद यहां कांग्रेस के महबूब अली कैशर और नीतीश सरकार में उद्योग मंत्री व जद-यू प्रत्याशी दिनेश चंद्र यादव में कांटे की लड़ाई है. चुनाव में जद-यू को अंदरूनी कलह का सामना करना पड़ा, तो कांग्रेस को मुसलमानों के साथ-साथ ब्राह्मण व राजपूतों का भी वोट मिला है. यहां भी कांग्रेस के लिए आसार अच्छे हैं. बेगूसराय में जद-यू के मोनाजिर हसन के जीतने की संभावना अधिक है. यहां पर भूमिहार समाज पूरी तरह से वामपंथी उम्मीदवार शत्रुघ्न प्रसाद सिंह के पक्ष में गोलबंद था तो मुसलमान व अतिपिछड़ा वर्ग मोनाजिर के पक्ष में. लोजपा उम्मीदवार अनिल सिंह को यादव व दलित मतदाताओं के वोट मिले, तो कांग्रेसी अमीता भूषण को राजपूत, ब्राह्मण के साथ-साथ पार्टी के परंपरागत वोटरों का भी साथ मिला. कटिहार से कांग्रेस समर्थित राकांपा उम्मीदवार तारिक़ अनवर आगे माने जा रहे हैं. यहां मुस्लिम के साथ-साथ ब्राह्मण, राजपूत व भूमिहार मतदाताओं ने गोलबंद होकर तारिक़ के पक्ष में मतदान किया. अररिया में मुस्लिम, यादव व दलित वोटों के कारण लोजपा के जाक़िर अनवर की जीत की संभावना अधिक है. यहां उनका मुक़ाबला निर्दलीय सुखदेव पासवान व भाजपा के प्रदीप सिंह के साथ है.

शरद यादव | जयप्रकाश नारायण यादव | दिग्विजय सिंह

प्रदेश में अब चौथे चरण में केवल तीन सीट–नालंदा, पाटलिपुत्र और पटना साहिब–में मतदान होना है.

संतोष कुमार

feedback.chauthiduniya@gmail.com

जनता ग़रीब प्रतिनिधि अमीर

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

कितनी अज़ीब बात है कि इस देश में, जहां 77 प्रतिशत आबादी या लगभग 84 करोड़ लोगों की प्रतिदिन की कमाई बमुश्किल बीस रूपए होती है और लगभग तीस करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे जी रहे हैं, वहां राज्यसभा के लगभग आधे सदस्यों और लोकसभा के एक तिहाई सदस्यों की परिसंपत्ति करोड़ों में है. राज्यसभा और लोकसभा के सिर्फ दस–शीर्ष सदस्यों की ही परिसंपत्ति 1, 500 करोड़ रुपए की बैठती है. देश में कुछ विधायक तो सांसदों से भी अमीर हैं. अगर सभी तीस राज्यों से पांच–पांच शीर्ष विधायकों की परिसंपत्तियों को देखें तो वे 2,042 करोड़ रुपए के आसपास बैठती है.

हाल तक यही देखा जाता था कि पैसे वाले राज्यसभा में ही जाना पसंद करते हैं. इसके लिए उन्हें लाखों मतदाताओं के बजाय चंद विधायकों के साथ सौदा करना पड़ता है, जो काफी आसान पड़ता है. लेकिन लोकसभा का चुनाव लड़ने के लिए क्षेत्र में महीनों धूल फांकनी पड़ती है. इतिहास गवाह है कि संसद में पिछले दरवाज़े से जाने वाले इन अमीरों का मकसद सिर्फ और सिर्फ अपना रुतबा बढ़ाना होता है. बिड़ला जी से लेकर विजय माल्या तक ऐसे अनगिनत नाम हैं. पर ये ऐसे नाम हैं, जिनकी आय के स्रोत के बारे में सब जानते हैं. लेकिन इस बार के लोकसभा चुनावों में इतने करोड़पति–अरबपति प्रत्याशी हैं, जिनके अमीर बनने का राज़ लोगों को नहीं मालूम. ऐसे में आम धारणा यही बनती है कि उन्होंने राजनीति की आड़ में कमाई की है. यह ठीक है कि ऐसा सोचना उचित नहीं है, लेकिन लोग इसके लिए मजबूर हैं. अब कांग्रेस, भाजपा, समाजवादी पार्टी, बसपा और माकपा आदि के आयकर रिटर्न का ही विश्लेषण करें तो दिलचस्प आंकड़े मिलते हैं. 2002 से 2006 के बीच यानी पांच सालों में ये पार्टियां तीन से 41 प्रतिशत तक धनी हुईं. ग़ौरतलब है कि कांग्रेस पांच साल के अंतराल के बाद 2004 में सत्ता में लौटी थी. इसके दो साल बाद यानी 2006 में इसकी आय बढ़कर 229 करोड़ थी, जबकि 2002 में 65 करोड़ रुपए ही थी. इतना ही नहीं, तब की सत्तारूढ़ पार्टी भाजपा की कुल आय 81 करोड़ रुपए से काफी कम थी. कांग्रेस का खजाना तब तक कुछ ख़ास नहीं भरा था, जब तक कि 2004 के चुनाव में उसे लोकसभा में भाजपा से कुछ अधिक सीटें नहीं मिल गई थीं. 1999 में 112 सांसदों के साथ विपक्ष में बैठने को मजबूर हुई कांग्रेस के पास चौदहवीं लोकसभा में 145 सांसद हो गए. उधर, इसी दौरान भाजपा सांसदों की संख्या 182 से घटकर 138 हो गई. इससे सत्ता के समीकरण भी बदल गए.

भाजपा के सांसद क्या कम हुए कि उसकी किस्मत ही फूट गई. सत्ता जाने के साथ–साथ बैलेंसशीट भी बिगड़ गई. जिस भाजपा की परिसंपत्ति 2004 में कांग्रेस की 136 रुपए की परिसंपत्ति की तुलना में 155 करोड़ रुपए थी, उसकी ज़ेब 2005 में ख़ाली होकर 122 करोड़ रुपए और 2006 में और घटकर 112 करोड़ रुपए की ही रह गई. जो किस्मत भाजपा को छोड़ गई थी, वह अब कांग्रेस के पास थी. यही कारण है कि सत्ता में आते ही कांग्रेस की किस्मत धन के मोर्चे पर भी बुलंद हो गई. सत्तारूढ़ यूपीए की मुख्य पार्टी कांग्रेस की परिसंपत्ति 2005 में जहां 167 करोड़ रुपए पहुंच गई, वहीं 2006 में 229 करोड़ रुपए की हो गई.

मजे की बात यह कि चौदहवीं लोकसभा में मनमोहन सरकार को बाहर से समर्थन देने वाली माकपा भी इस मामले में पीछे नहीं रही. खुद को सर्वहारा वर्ग की प्रतिनिधि कहने वाली इस पार्टी की जो परिसंपत्ति 2002 में मात्र 52 करोड़ थी, वह 2006 में बढ़कर 107 करोड़ रुपए तक पहुंच गई थी. मनमोहन सरकार के साथ माकपा का हनीमून 2008 के अंत तक चला था. ऐसे में कोई खुद अनुमान लगा सकता है कि 2002 से 2008 के बीच उसकी परिसंपत्ति में कितनी बढ़ोतरी और हुई होगी. यानी मनमोहन सरकार के लिए बैसाखी बनने का फैसला इस दौरान पार्टी को खूब रास आया. यह ठीक है कि राष्ट्रीय पार्टियों के मुकाबले में सपा और बसपा नहीं आती हैं. लेकिन 2002 से 2006 के बीच सीमित क्षेत्रों में प्रभाव के बावजूद ये दोनों पार्टियां भी खूब फलीं–फूलीं. शायद इसीलिए कि इन दोनों ही पार्टियों के पास अपना मजबूत और प्रतिबद्ध जनाधार व समर्थन है. उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती ने आयकर विभाग के सामने बार–दावा किया है कि बसपा कार्यकर्ताओं ने उन्हें चंदे में करोड़ों रुपए दिए हैं. लेकिन इसके उलट सपा के पास कुछ कंपनियों का अच्छा ख़ासा समर्थन है. अब ज़रा सांसदों की बात कर लें. अगर दिल्ली और गोवा जैसे छोटे राज्यों को छोड़ दें, तो 2004 में महाराष्ट्र के सांसदों की घोषित औसत संपत्ति 110 लाख रुपए थी. इनमें शिवसेना के सांसदों के पास 64 लाख और कांग्रेस के सांसदों के पास 191 लाख रुपए की संपत्ति थी. अचरज की बात यह कि आंध्र प्रदेश के सांसदों की घोषित संपत्ति 490 लाख रुपए थी. जबकि उस समय महाराष्ट्र की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में आंध्र प्रदेश की प्रति व्यक्ति आय तीस फीसदी कम थी. हालांकि 2007– 2008 में आंध्र की प्रति व्यक्ति आय महाराष्ट्र आदि से काफी अधिक हो चुकी थी. बहरहाल, वर्ष 2004 के आंकड़ों के मुताबिक देश में सबसे अमीर सांसद पंजाब के थे. यहां प्रति सांसद औसत संपत्ति 672 लाख रुपए की थी. लेकिन लक्ष्मी की कृपा गुजरात के सांसदों पर उतनी अधिक नहीं रही. महाराष्ट्र के सांसदों की तुलना में गुजरात के सांसद की औसत संपत्ति 40 फीसदी कम रही. उधर, बिहार, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश जैसे ग़रीब राज्यों के आंकड़े तो और चौंकाने वाले थे. बिहार में सांसदों के पास जहां औसत संपत्ति 101 लाख रुपए की थी, तो उत्तरप्रदेश के सांसद महाराष्ट्र के अपने साथियों से तीन गुना रईस थे. महाराष्ट्र की ही तुलना में मध्यप्रदेश के सांसद भी 14 फीसदी कम रईस थे.यहां अधिक नहीं, सिर्फ उन आठ राज्यों के आंकड़ों पर ग़ौर कर लें जिनपर सबसे अधिक कर्ज़ हैं. इस सूची में उत्तरप्रदेश के होने से अधिक बिहार का इसमें न होना चौंकाता है. ख़ैर, वर्ष 2007–2008 में उत्तरप्रदेश पर कुल कर्ज़ 1,74,138 करोड़ रुपए का था. जहां तक प्रदेश की आय की बात है तो वह 76,565 करोड़ रुपए थी. इस तरह उत्तरप्रदेश में प्रति व्यक्ति कर्ज़ 9,122 रुपए था. उधर, महाराष्ट्र में प्रति व्यक्ति कर्ज़ जहां 10,073 रुपए, पश्चिम बंगाल में 15, 323 रुपए, आंध्रप्रदेश में 14,138 रुपए, गुजरात में 17, 172 रुपए, राजस्थान में 11,927 रुपए, तमिलनाडु में 11,260 रुपए और केरल में प्रति व्यक्ति कर्ज़ 17,119 रुपए था. विकास की बड़ी–बड़ी बातें करने वाली भाजपा के शासन वाले गुजरात का इस सूची में पहले नंबर पर आना शर्मनाक है. ऐसे ही, वाम मोर्चा शासित पश्चिम बंगाल और केरल के प्रति व्यक्ति कर्ज़ के मामले में देश में दूसरे व तीसरे नंबर पर रहने का क्या जवाब देगी माकपा और उसके मुखिया प्रकाश करात? इस बार के लोकसभा चुनाव में करोड़पति प्रत्याशियों की भरमार है. सबसे अमीर प्रत्याशी पीलीभीत में वरुण गांधी के खिलाफ हैं. उत्तरप्रदेश के पीलीभीत से कांग्रेस प्रत्याशी वीरेंद्र मोहन सिंह के पास 631.74 करोड़ रुपए की संपत्ति है. बैंकों में लाखों रुपए तो जमा हैं ही, साथ ही उनके पास अलग– अलग जगहों पर 414.60 करोड़ रुपए की कृषि भूमि भी है. मकान और वाहन की गिनती इनसे अलग है. अमीर प्रत्याशियों में दूसरे नंबर पर रहे पश्चिमी दिल्ली संसदीय क्षेत्र से बसपा प्रत्याशी दीपक भारद्वाज. उन्होंने अपनी संपत्ति 622 करोड़ रुपए की बताई है. वैसे देश भर में अबकी पिछले चुनाव की तुलना में चार गुणा अधिक करोड़पति प्रत्याशी चुनाव मैदान में उतरे हैं.

गंगेश मिश्र

feedback.chauthiduniya@gmail.com

इस तरह होती है लोकसभा सदस्य की कमाई

वेतन के रूप में लोकसभा सदस्यों को 12 हज़ार रुपए प्रति माह मिलते हैं. उन्हें दस हज़ार रुपए चुनाव क्षेत्र भत्ते के तौर पर और 14 हज़ार रुपए दफ्तर खर्चे के लिए मिलते हैं. इनमें स्टेशनरी के लिए तीन हज़ार, पत्राचार के लिए एक हज़ार और निजी सहायक के लिए 10 हज़ार रुपए शामिल होते हैं.

इस नौकरी में कई तरह की अन्य सुविधाएं भी मिलती हैं, जैसे–

- दैनिक यात्रा भत्ता
- संसद सत्र चल रहा हो तो पांच सौ रुपए का दैनिक भत्ता.
- सांसद और उनके जीवनसाथी के लिए फर्स्ट क्लास से अनगिनत मुफ्त रेल यात्रा की सुविधा
- दिल्ली के बीचो–बीच शानदार मकान.
- 50,000 यूनिट बिजली हर साल मुफ्त.
- 4,000 किलोलीटर पानी हर साल मुफ्त
- टेलीफोन की तीन लाइनें और हर साल डेढ़ लाख मुफ्त टेलीफोन कॉल.
- सांसद और उनके परिवार के लिए मुफ्त चिकित्सा सुविधा. इसके लिए उन्हें सिर्फ डेढ़ सौ रुपए हर महीने केंद्र सरकार की स्वास्थ्य योजना में देने होते हैं.
- उन्हें तीन हज़ार रुपए की मासिक पेंशन भी मिलती है. इसके अलावा पांच साल से अधिक जितने साल संसद सदस्य रहे हों, उसके लिए छह सौ रुपए सालाना के हिसाब से हर महीने मिलेंगे.

ठेके पर लोकतंत्र

प्रभात कुमार शांडिल्य

देश की 15वीं लोकसभा का चुनाव जाहिर तौर पर भारतीय संविधान के मुताबिक चलने वाली एक संवैधानिक प्रक्रिया नहीं रह गई है. लोकशाही के नाम पर आज जो कुछ भी किया जा रहा है, वह इसी धारणा को पुष्ट करता है कि जनप्रतिनिधि चुनने के बदले सभी छोटी–बड़ी पार्टियां भारतीय लोकतंत्र को ठेके पर लेने के लिए आमादा हैं. दल चाहे राष्ट्रीय हों या क्षेत्रीय, सभी लोकतंत्र के पहरेदार बनने के बदले लोकतंत्र के ठेकेदार बन बैठे हैं. भारत की लोकसभा में 543 निर्वाचित और दो मनोनीत समेत कुल 545 सदस्य होते हैं.

मजे की बात यह है कि ऐसी पार्टियां जो पांच प्रतिशत सीटों पर भी अपना उम्मीदवार खड़ा करने की ताकत नहीं रखती है, यानी जिन पार्टियों ने 27–28 सीटों पर भी उम्मीदवार खड़ा नहीं किया है, उन दलों के मठाधीश लगभग एक दर्जन नेता भी भारत का प्रधानमंत्री बनने के दावेदार हैं.

देश की आज़ादी के बाद पहले ही आम चुनाव के दरम्यान कुछ क्षेत्रों से कमज़ोर तबके के मतदाताओं के वोट कई जगहों पर चार आने, आठ आने और एक रुपए में खरीद लिए जाने की ख़बरें आईं. 1952 और 1957 के चुनाव तक न तो ईवीएम मशीन थी, न बैलेट पेपर में सभी उम्मीदवारों के नाम और चुनाव चिह्न हुआ करते थे, बल्कि हर मतदान केंद्र पर प्रत्याशियों के नाम और चुनाव चिह्न के साथ मतपेटी रखी रहती थी. साथ ही एक छोटा सा बैलेट पेपर होता था, जिसे मनपसंद उम्मीदवार के बक्से में डाल देना होता था. उस वक्त के चालाक और होशियार नेता ग़रीब तबके के वोटरों को बूथ पर जाने के पहले यह समझा दिया करते थे कि मतदान केंद्र में किसी बक्से में मतपत्र नहीं गिरा देना, बल्कि छुपाकर लेते आना और मुझे सुपुर्द कर देना. ऐसे बूथ मैनेजर और नेता मतदाताओं को चार आने, आठ आने और एक रुपए में समय, स्थान और परिस्थिति के मुताबिक खरीद लेते थे. फिर एक तथाकथित समझदार आदमी अपने साथ उन सारे मतपत्रों को ले जाता था और अपने मत के साथ उन मतपत्रों को खास उम्मीदवार के बक्से में डाल देता था. इस तरह जब दो चुनावों के बाद मतदान प्रक्रिया में गंदगी और भ्रष्टाचार के ढेर सारे उदाहरण आने लगे तो 1962 में मतदान प्रक्रिया में बदलाव लाया गया. उसके बाद एक ही मतपत्र में सारे उम्मीदवारों के नाम के साथ चुनाव चिह्न छपे होते थे, जिनमें से किसी एक चिह्न पर मुहर लगाकर उसे एक ही बक्से में डालना होता था. नेताओं ने इसका भी तोड़ निकाल लिया. अब उम्मीदवार के लोग मतदाताओं के घर पर जाकर पैसा देने लगे, डमी बैलेट पेपर पर मुहर लगाने की प्रक्रिया समझाने लगे, चुनाव चिह्न की पहचान कराने लगे ताकि निरक्षर मतदाता मतदान केंद्र के अंदर कोई गड़बड़ी न कर बैठे. 1962 के चुनाव में बड़ी संख्या में मतपत्र रद्द होने के अनुभव से सीख लेते हुए बेईमान प्रत्याशियों ने बूथ कब्ज़े की घटना को अंजाम दिया. वे इलाके के दबंग गुंडों के जरिए ग्रामीण क्षेत्रों के कमज़ोर तबके के निरक्षर मतदाताओं को डराने धमकाने लगे, मतदान केंद्रों पर जाने से रोका जाने लगा और मतदान कर्मियों को खिलाने–पिलाने और घूस देने की परंपराएं शुरू हुईं. यह सिलसिला 1977 में थोड़ा बदला. 1977 में बूथ लूट की बहुत शिकायतें नहीं आईं. हालांकि, 1977 से लेकर 1984 तक बूथ–लूट और बूथ–समर्पण (इसके तहत गांव के बुजुर्ग इलाके के कुछ युवकों को अधिकृत कर देते थे कि वे पूरे गांव का वोट डाल दें) की प्रक्रियाएं अपने चरम पर पहुंच गईं. इस बीच उत्तर भारत की राजनीति में लगा यह दीमक मध्य और दक्षिण भारत में भी अपने पांव पसारने लगा. कई जगहों पर तो पेशेवर बूथ लुटेरों ने विभिन्न राजनीतिक दलों से टिकट हासिल करने में सफलता पाई और खुद अपने लिए बूथ लूट कर विधायिका और संसद में पहुंचने लगे. 1971 से शुरू हुई इस प्रक्रिया का परिणाम 18 वर्षों बाद दिखा, जब 1989 में देश की विधायिका और संसद में लगभग 10 प्रतिशत दागी पहुंचे. विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार गिरने के बाद विभिन्न राजनीतिक दलों ने प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं के बदले जीतने में सक्षम उम्मीदवारों की तलाश शुरू कर दी. हर नेता गुर्गे पालने लगा और नतीज़ा हुआ कि राजनीति में गुंडा तत्व हावी होते गए.

1996 के लोकसभा चुनाव में किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं था, वैसे में तत्कालीन राष्ट्रपति डा. शंकर दयाल शर्मा ने अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री बनने के लिए आमंत्रित किया, शपथ दिलाई और लोकसभा में विश्वासमत हासिल करने का निर्देश दिया था. शपथ ग्रहण के 13वें दिन वाजपेयी जी लोकसभा में अपना बहुमत साबित न कर सके और उन्होंने राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र सौंप दिया. तीन दिनों बाद देवेगौड़ा ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली. 10 महीने बाद उन्हें भी जाना पड़ा और खिचड़ी सरकार के दूसरे प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल बने. वह सरकार भी एक साल पूरा नहीं कर सकी और फिर चुनाव कराने पड़े. वैसे भी चुनाव में 1995 के बाद से राजनीतिक दलों से अधिक, देश के प्रधानमंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्रियों से अधिक महत्व चुनाव आयोग का हो गया है. पहचान–पत्र के नाम पर देश के 40 प्रतिशत मतदाताओं को किसी न किसी तरह उनके सबसे मौलिक अधिकार–मताधिकार–से ही वंचित किया जा रहा है. हालांकि इस बार लगता है कि पुराने दोनों ठेकेदार–कांग्रेस और भाजपा वाले–इस बार ठेका पाने में सफल नहीं हो पाएंगे. इसलिए कि जनता उनसे आजिज़ आ चुकी है, उनको अच्छी तरह परख चुकी है और उनके काम से असंतुष्ट रही है. इसके प्रमाण कई जगहों पर दिखाई भी पड़ रहे हैं. अब रह गई छोटे ठेकेदारों की बात, तो लगता है इस बार 16 मई को भारतीय लोकतंत्र का ठेका कई छोटे ठेकेदार मिलकर लेने में सफल हो जाएंगे. यह भी संभव है कि नई सरकार अधिक महीने न चल सके और देश को मध्यावधि चुनाव का सामना फिर से करना पड़े, क्योंकि यह राजनीति है और इसमें कुछ भी संभव है. जब देश आज़ाद हुआ था, तो जनता त्यागी, संतोषी, संघर्षशील और लोकतांत्रिक मूल्यों में भरोसा रखने वाले, सत्तालोलुपता से दूर रहने वाले लोगों को अपना प्रतिनिधि चुनती थी.

आज़ादी के 60–62 साल में परिस्थितियां बहुत बदल चुकी हैं. हर आदमी शॉर्टकट खोजता है. जो स्वयं भ्रष्ट है, वह भी खुद को दूध का धुला ही बताता है. इसलिए लगता है कि जनता जिस तरह की प्रतिनिधि चुना करती थी, वैसे लोगों की ज़रूरत अब जनता और देश को नहीं है. इसलिए जनता ने अब लोकतंत्र को ठेके पर चलाने का पक्का इरादा कर लिया है. ताकि पांच साल वह चैन से सो सके, रोज–रोज की खिच–खिच से दूर रह सके.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

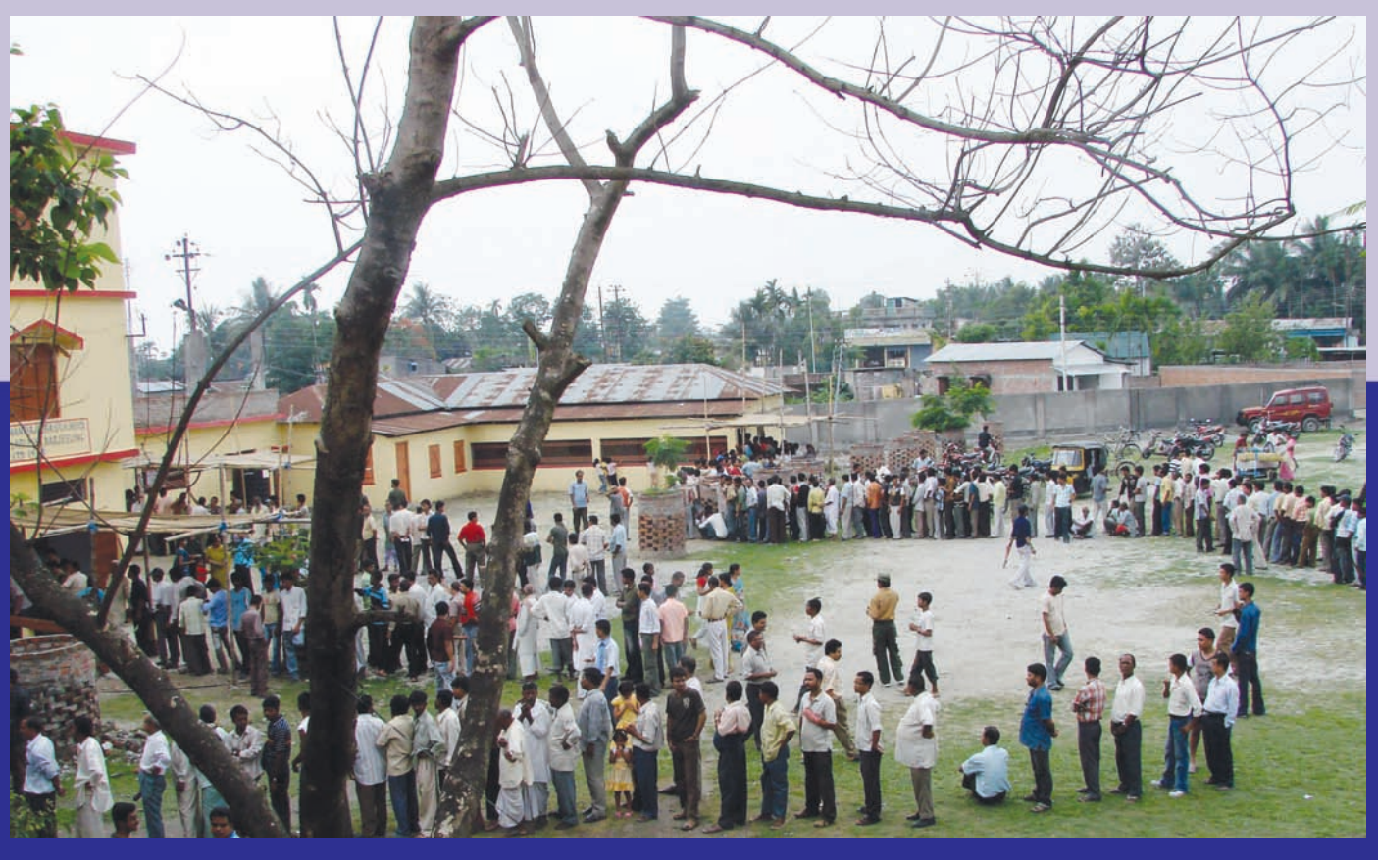

देश की आज़ादी के बाद पहले ही आम चुनाव के दरम्यान कुछ क्षेत्रों से कमज़ोर तबके के मतदाताओं के वोट कई जगहों पर चार आने, आठ आने और एक रुपए में ख़रीद लिए जाने की ख़बरें आईं.

हालांकि इस बार यही लगता है कि पुराने दोनों ठेकेदार–कांग्रेस और भाजपा वाले–इस बार ठेका पाने में सफल नहीं हो पाएंगे. इसलिए कि देश की जनता उनसे आजिज़ आ चुकी है. उनको अच्छी तरह परख चुकी है और उनके काम से असंतुष्ट रही है.

पाकिस्तान में किसान आंदोलन

पाकिस्तान में फौज़ राजनीतिक और सामाजिक ढांचे का अभिन्न अंग रही है. बंटवारे के बाद 50 और 60 के दशक में पूरे पाकिस्तान में और ख़ास कर पंजाब में हज़ारों एकड़ ज़मीन स्टड फर्म के नाम पर फौज़ को अलॉट की गई, ताकि वे अपनी ज़रूरत के हिसाब से घोड़ों की अच्छी नस्ल पैदा कर सकें.

पाकिस्तान के बारे में आम ख्याल यह है कि यहां से आने वाली ख़बर या तो तालिबान से संबंधित होंगी या फिर आतंकवादियों के ख़िलाफ़ आर्मी ऑपरेशन की. हमारे अपने टेलीविजन चैनल या अख़बारों को तो छोड़िए, खुद पाकिस्तानी अख़बारों और टी.वी. चैनलों के लिए आतंकवाद और तालिबान सब से ज़्यादा बिकने वाला आइटम बन चुके हैं. यही वजह है कि अक्सर पाकिस्तान के बारे में हमारी मालूमात तालिबान और आतंकवाद से आगे नहीं बढ़ पाती. सच्चाई यह है कि पाकिस्तान में इन दो चीज़ों के अलावा भी बहुत कुछ होता है और एक पड़ोसी होने के नाते हमें वहां पनपने वाले लोकतंत्र के बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए.

अभी हाल ही में आतंकवाद और तालिबान के इसी हो-हल्ले के बीच पाकिस्तान में एक ऐसी घटना भी घटी जो न सिर्फ खुद में अभूतपूर्व है, बल्कि उसे पाकिस्तान के भविष्य का एक संकेत भी कहा जा सकता है. यह घटना है पाकिस्तान के पंजाब में किसानों का आंदोलन. पिछले महीने (अप्रैल) के आख़िरी दिनों में पूरे पंजाब से करीब 15 हज़ार से अधिक किसान पंजाब प्रांत के ओकारा जिले में स्थित चक नंबर 4 में जमा हुए और अपनी मांगों को लेकर सरकार और फौज़ के ख़िलाफ़ जोरदार आंदोलन की बात कही. किसानों के इस जमावड़े की सब से ख़ास बात यह थी कि 15000 की इस भीड़ में 5000 किसान महिलाएं भी थीं. पाकिस्तान के केवल एक टेलीविजन चैनल एआरवाई ने इस की कवरेज़ की, जबकि प्रिंट मीडिया ने इसे कोई ख़ास तवज्जो नहीं दी. अपनी मांगों को लेकर पाकिस्तानी किसानों का यह आंदोलन अपने आप में एक महत्वपूर्ण घटना है और इसे समझने के लिए इसकी पृष्ठभूमि को जानना जरूरी है.

पाकिस्तान में फौज़ राजनीतिक और सामाजिक ढांचे का अभिन्न अंग रही है. बंटवारे के बाद 50 और 60 के दशक में पूरे पाकिस्तान में और खास कर पंजाब में हज़ारों एकड़ ज़मीन स्टड फर्म के नाम पर फौज़ को अलॉट की गई, ताकि वे अपनी ज़रूरत के हिसाब से घोड़ों की अच्छी नस्ल पैदा कर सकें. फौज़ के अफसरों ने ये ज़मीन खेती के लिए किराए पर देनी शुरू कर दी. नतीजा यह हुआ कि जो बेज़मीन किसान सरकारी ज़मीन पर पिछले सौ सालों से खेती करते चले आ रहे थे, इन नई ज़मीन मालिकों के किराएदार बन गए. फौज़ ने अपना फायदा देखते हुए ये सारी ज़मीन मिलिट्री फर्म एडमिनिस्ट्रेशन के अधिकार में दे दीं और अब हाल यह है कि पूरे गांव के गांव इस असोसिएशन के कंट्रोल में हैं. इन इलाकों में स्कूल और हॉस्पिटल तो दूर की बात, मरने वालों के लिए कब्रिस्तान की भी जगह नहीं है. यह पूरी तौर से फौज़ की छत्रछाया में है. 1985 में जनरल जिया के ज़माने में फौज़ के बड़े अफसरों ने एक नया जाल फेंका और खेतों में काम करने वाले इन किसानों को लीज पर ज़मीन देनी शुरू कर दी. हालांकि जब इन किसानों को लीज पर ज़मीन लेने के नुकसान का अंदाजा हुआ, तो उन्होंने इससे इंकार कर दिया. साल 2000 में जनरल मुशर्रफ की हुकूमत में एक बार फिर किसानों को ज़मीन लीज पर लेने का झांसा दिया गया, लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया. यहां से इन ज़मीन पर काम कर रहे किसानों का झगड़ा शुरू हुआ. इन बेज़मीन किसानों ने फौज़ की पॉलिसी का खुल कर विरोध किया और मालिकाना हुकूक या मौत के नारे के साथ अपना विरोध प्रकट करना शुरू किया. साल 2001-2004 के बीच जब इस आंदोलन ने ज़ोर पकड़ना शुरू किया तो सरकारी मशीनरी ने उसे पूरी ताक़त से कुचलने की कोशिश की और इसमें सात किसान नेता अपनी जान से हाथ धो बैठे. यहां यह बताना भी जरूरी है कि पाकिस्तान में अब तक ज़मीन सुधार का कोई काम नहीं हुआ है और यही वजह है कि पाकिस्तान के अधिकतर नेता, जिनका संबंध ज़मीदार खानदानों से है, अभी भी हज़ारों एकड़ ज़मीन के मालिक हैं. ज़मीन पर सीलिंग न होने की वजह से कुछ लोगों के पास तो एक-एक लाख एकड़ ज़मीन भी है. फिलहाल पंजाब के किसान तीन जगहों-कुल्याना मिलिट्री स्टेट, बंगाली मिलिट्री फर्म और ओकारा मिलिट्री फर्म-में किसान मज़दूरों से होने वाले सुलूक को लेकर बेहद चिंतित हैं. एक जायजे के अनुसार 68000 एकड़ खेतिहर ज़मीन सिर्फ पंजाब में मिलिट्री फर्म, आर्मी वेलफेअर ट्रस्ट और पंजाब सीड कॉरपोरेशन के अंतर्गत है.

किसानों के इस जमावड़े की सब से ख़ास बात यह थी कि 15000 की इस भीड़ में 5000 किसान महिलाएं भी थीं. पाकिस्तान के केवल एक टेलीविजन चैनल एआरवाई ने इस की कवरेज़ की, जबकि प्रिंट मीडिया ने इसे कोई ख़ास तवज्जो नहीं दी.

इन इलाकों के किसान पूरी तरह से सरकार और फौज के ख़िलाफ़ खुल कर सामने आ गए हैं. इस घटनाक्रम का सबसे दुखद पहलू यह है कि पाकिस्तान की दो सब से बड़ी पार्टियों-पीपीपी और पीएमएल-ने भी अपनी सरकारों के ज़माने में इस मसले पर कुछ नहीं किया. किसानों का यह आंदोलन पूरी तौर पर किसान लीडर ही चला रहे हैं और जनवरी से अप्रैल के बीच हुए किसानों के सम्मेलनों ने उनकी आवाज़ को राष्ट्रीय स्तर पर दर्ज कराया है. यही वजह है कि पाकिस्तान में उर्दू के सबसे बड़े अखबार जंग के एक बहुत सीनियर स्तंभकार इरशाद अहमद हक्कानी ने 24 अप्रैल को एक पूरा कॉलम-जनरल कियानी से अपेक्षाएं-लिखा और उस में उन्होंने पाकिस्तानी फौज़ के चीफ से ज़ोर देकर कहा है कि वे फौज़ के अफसरों और सिविल बाबुओं द्वारा ज़मीन से बेदखल किए जानेवाले किसानों की समस्याओं का नोटिस लें, क्योंकि वे पुश्तों से इन ज़मीन पर खेती करते चले आ रहे हैं और यही उनके पालन-पोषण का अकेला ज़रिया है.

पंजाब के किसान अपनी मांगों को लेकर कोई भी कुर्बानी देने के लिए तैयार हैं. कुल्याना मिलिट्री स्टेट में ज़मीन को लीज पर देने के मामले पर शुरू होने वाले तनाव के बाद 6 अप्रैल 2009 को तीन किसान नेताओं की फायरिंग में मौत ने उन्हें बिफरने पर मज़बूर कर दिया. किसानों का यह आंदोलन आने वाले दिनों में क्या रंग दिखाएगा, इसकी एक झलक एक किसान नेता के बयान से मिलती है जो उसने मीडिया को दिया. इस नेता का कहना था कि हम ने सारी गोलियां सीने पर खाई हैं, न कि पीठ पर. और यह इस बात का सबूत है कि हम आगे बढ़ रहे है. ऐसा लगता है कि पाकिस्तान के किसान खासकर पंजाब के किसानों ने अल्लमा इकबाल के इस शेर पर अमल शुरू कर दिया है, जिस में उन्होंने कहा था-

जिस खेत से दहक़न (किसान) को मय्यसर न हो रोटी
उस खेत के हर खोश-ए-गंदुम (गेहूं की बाली) को जला दो.

नइमा परवेज

feedback.chauthiduniya@gmail.com

लोकसभा टीवी से ग़ायब रहा चुनाव

इस वक्त देश में सबसे अहम क्या हो रहा है? इसका सीधा सा जवाब है-आम चुनाव. पूरा देश इस समय चुनावी खुमार में है. जनता-जनार्दन चाय की चुस्कियों के बीच चुनावी चकल्लस में व्यस्त है, तो नेता लोग दर-दर की धूल फांक कर जनता से वोट मांग रहे हैं. क्या छोटा और क्या बड़ा, सभी चुनावी गणित के जोड़-घटाव में लगे हैं. मीडिया भला इस बुखार से कैसे बच सकता है? अख़बार से लेकर हरेक ख़बरिया चैनल तक इस चुनावी गंगा में नहा चुका. लेकिन एक संस्थान इन सबसे परे है. बिल्कुल वीतराग हो चुका है-कोउ नृप होउ हमें का हानि, चेरि छांड़ि कब होइबे रानी-की ही तर्ज पर.

चुनाव के चार चरण हो चुके हैं. एक चरण और होना है. हफ्ते भर के बाद नई लोकसभा चुन कर आ जाएगी, लेकिन यह संस्थान अभी उसी अजगरी नींद में है जिसमें वह अपनी स्थापना के दिन से ही डूबा है. सबसे अज़ीब बात तो यह है कि जिस लोकसभा को चुनने के लिए चुनाव हो रहे हैं, यह संस्थान उसी लोकसभा का प्रवक्ता होने का दावा करता है. लोकसभा का एकमात्र टीवी चैनल होने का दावा करने वाले इस टीवी चैनल में चुनाव को लेकर कुछ भी नहीं है.

ग़ौरतलब है कि अपनी स्थापना से ही लोकसभा टीवी एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चैनल होने का दावा करता रहा है. साथ ही अन्य चैनलों से अलग दिखना इसके एजेंडे में शामिल था. इतनी तो तारीफ़ करनी ही होगी कि अपनी स्थापना के एक साल बाद यह चैनल सच में अन्य चैनलों से अलग दिखता है. चैनल इतना अलग कि इसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती. अपनी सुस्ती, दोयम दर्जे के कार्यक्रमों, लचर प्रस्तुतिकरण और घटिया प्रस्तोताओं के मामले में इस चैनल का सचमुच कोई जोड़ नहीं है. करोड़ों रुपए खर्च कर स्थापित किए गए इस चैनल का उद्देश्य था कि जिस संसद और सांसदों को हम चुन कर देश का राज चलाने भेजते हैं, उनको देश बेहतर ढंग से जान सके. वह होना तो दूर की बात, यह चैनल तो अपनी तरंग में इस कदर डूबा हुआ है कि पूरा चुनाव बीत गया, पर चुनाव के लिए दिन भर के चौबीस घंटे में बमुश्किल एक घंटे का समय खर्च किया गया. आप कभी भी इस चैनल की कार्यक्रम-तालिका देख लीजिए, चुनाव संबंधी खास कार्यक्रम आपको नहीं दिखेंगे. हां, योगी, बाबा और प्रवचनकर्ता ज़रूर मिल जाएंगे. इसकी तुलना में अगर बाकी चैनलों को देखें, तो खुद लोकसभा टी वी के कर्णधारों और उसके कर्मचारियों को ही शर्म आ जाएगी. जहां कई चैनलों ने अपने खास कार्यक्रमों तक को चुनाव की बलि चढ़ा दिया, तो कई ने चुनाव के लिए खास कार्यक्रम ही शुरू कर दिए. अगर औसत भी निकालें तो लगभग सभी राष्ट्रीय चैनलों ने दिन भर में पांच से छह घंटे चुनाव संबंधी कार्यक्रमों और विश्लेषण पर खर्च किए. आईबीएन-7 ने मेरा वोट, मेरी सरकार और वोट की चोट जैसे खास कार्यक्रम शुरू किए, तो स्टार न्यूज़ ने चुनावी टक्कर और कहिए नेताजी जैसे कार्यक्रम शुरू किए. इंडिया टीवी ने अपनी सारी स्पेशल रिपोर्ट को चुनावी कार्यक्रम में बदल दिया, तो आज तक और एनडीटीवी इंडिया भी पीछे नहीं रहा. उधर, अपना लोकसभा टीवी महानिद्रा में लीन ही रहा. वैसे भी सरकारी भोंपू होने के अपने फायदे हैं, तो घाटे भी. निज़ाम बदल सकता है, चेहरे बदल सकते हैं लेकिन सत्ता की चाल, चरित्र और चिंतन में बदलाव नहीं होते. सरकारी खैरात पर पलनेवाला लोकसभा टीवी भला सत्ता के ख़िलाफ़ कैसे जा सकता है? अगर वह कांग्रेस और यूपीए में शामिल अन्य दलों की आलोचना कर ही नहीं सकता, तो फिर चुनावी कार्यक्रम बनेंगे कैसे? हां, लोकसभा टीवी एक मायने में ज़रूर बहुत बढ़िया काम कर रहा है, वह लुप्तप्राय प्रजाति के पत्रकारों को जीवन की नई लीज़ ज़रूर दे रहा है. इसके एक कार्यक्रम में-जिसमें मन की बातें की जाती हैं- एक प्रसिद्ध पत्रकार ऐसे व्यक्तियों का इंटरव्यू करती हैं, जो आज के दौर में कतई प्रासंगिक नहीं हैं. अगर ग़लती से वह किसी समीचीन और महत्वपूर्ण व्यक्ति का इंटरव्यू कर भी लेती हैं, तो उनके सवालों का ही कोई प्रसंग नहीं होता. वह सोई-सोई और खोई-खोई लगती हैं. और, केवल वही क्यों, पूरा लोकसभा टीवी ही सोया सा लगता है. इसके रूप-रंग से लेकर इसके समाचार वाचक, कार्यक्रम और अधिकारी सभी न जाने किस दुनिया में खोए हुए से हैं. उनको ख़बर ही नहीं है कि दुनिया इस बीच कितनी बदल चुकी है और प्रतियोगिता कितनी कठिन हो गई है. इसके कर्मचारियों के वेतन और बाकी संसाधनों पर ही जितना रुपया खर्च होता है, वह और कुछ नहीं बस सरकारी पैसे की बर्बादी ही लगती है. लोकसभा टीवी एक और काम करता है. वह है अपने एकाधिकार का फायदा उठाने का. एकमात्र उसके पास ही संसद सत्र के प्रसारण का अधिकार है. इस एकाधिकार का वह फायदा उठाता है. पिछली सरकार ने जब विश्वास मत हासिल किया था, तो लोकसभा टीवी ने उसके प्रसारण के पांच मिनट के अधिकार के लिए हरेक टीवी चैनल से एक लाख रुपए लिए. इसी से उसका गुज़ारा भी चलता है. वरना जनता तो यह चैनल देखती नहीं, और जब जनता देखती नहीं तो सरकारी विज्ञापनों के अलावा और कुछ इसे मिलने से भी रहा. फिर, खर्च तो आख़िर ऐसे ही उपायों से चलेगा न.

वक्त आ गया है कि सरकारी पैसों की इस बर्बादी को बंद किया जाए और लोकसभा चैनल का पर्दा गिरा दिया जाए.

आप कभी भी इस चैनल की कार्यक्रम-तालिका देख लीजिए, चुनाव संबंधी खास कार्यक्रम आपको नहीं दिखेंगे. हां, योगी, बाबा और प्रवचनकर्ता ज़रूर मिल जाएंगे. इसकी तुलना में अगर बाकी चैनलों को देखें, तो खुद लोकसभा टी वी के कर्णधारों और उसके कर्मचारियों को ही शर्म आ जाएगी.

अखिलेश पाठक

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

तालिबान से पस्त पाकिस्तान

अफ़दास वहीद

हम में से सभी यही सोचते हैं कि आज के पाकिस्तान का क्या भविष्य है? क्या पाकिस्तान अपने विनाश की तरफ बढ़ रहा है? क्या पाकिस्तान पर कब्जा करने में तालिबान कामयाब होगा? कौन है जो तालिबान की मदद कर रहा है? क्या तालिबान इतना शक्तिशाली है कि वह नाटो और पाकिस्तानी सेना को पस्त करने में कामयाब हो रहा है? क्या अमेरिका भविष्य में पाकिस्तान के न्यूक्लियर ठिकानों पर हमला कर सकता है? ऐसे तमाम सवाल आज हमारे ज़ेहन में गूंज रहे हैं.

इससे भी गंभीर बात यह कि हमें यह भी नहीं पता कि क्या यह हमारी लड़ाई है? क्या तालिबान हमारा दुश्मन है? और कौन है, जो बलूचिस्तान और नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस में गड़बड़ी फैला रहा है? किन कारणों से अमेरिकी मिसाइलें पाकिस्तानी सरहदों पर कहर बरपा रही हैं? क्या इन मिसाइलों से मर रहे सभी लोग वही खौफनाक तालिबानी हैं, जिन्हें दुनियाभर के लिए ख़तरा बताया जा रहा है? जिनसे लड़ने के लिए पूरी दुनिया कमर कस चुकी है और इसे आतंक के खिलाफ युद्ध का नाम दे रही है?

इनमें से ज़्यादातर सवालों के जवाब हमें नहीं दिए जाएंगे, क्योंकि पाकिस्तान में सवाल पूछने का हक़ किसी के पास नहीं है. हम महज रोज़ की घटनाओं से जो जवाब खोज सकते हैं, वही हमारे दिमाग में उठ रहे सवालों की भूख को कुछ हद तक कम कर सकते हैं. हमारे नेता हमें हक़ीकत से दूर रखते हैं. वे देश को इस युद्ध के लिए तैयार नहीं करना चाहते. यह बात अवाम से छिपाई जा रही है कि तालिबान की ताक़त के पीछे कौन-सी शक्तियां काम कर रही हैं. हक़ीकत यह है कि तालिबान का नेटवर्क पूरे देश में फैल चुका है. स्वात समझौता महज इस नेटवर्क की एक झलक है, जहां पाकिस्तान ने अपने वज़ूद को खुद ही तालिबानियों के हाथों ख़त्म कर दिया है. इसके बाद इस्लामाबाद, पेशावर, लाहौर, रावलपिंडी और कराची पर भी आतंक का खतरा मंडरा रहा है.

तालिबान अपने लड़ाकों को आसानी से एक जगह से दूसरे जगह पर लड़ने के लिए तैनात कर सकता है. उनके साथ पाकिस्तानी तालिबान की भी फोर्स तैयार है जिन्हें फौजी ट्रेनिंग देकर जिहाद के लिए तैयार किया गया है. फाता और मलाकंद में इस नेटवर्क को पूरी वित्तीय मदद भी मिली है, जिसके जरिए ये लोग आसानी से महंगे विस्फोटक खरीद रहे हैं जिसे वह कार बम धमाकों में इस्तेमाल कर रहे हैं. इसके साथ ही इन इलाकों से मासूम बच्चों को भी तालिबान ने मानव बम बनाने के लिए तैयार किया है और उन्हें भी पैसा मिल रही मदद से ही दिया जाता है.

जब तालिबान किसी इलाके में शांति का समझौता करता है तो उसका मकसद महज़ समय लेना होता है. वे इस दौरान अपनी टुकड़ियों की बेहतर तैनाती को अंजाम दे डालते हैं. आज तालिबान महज़ वह ताकत नहीं है जिसे आप एक इलाके में हरा दें और उम्मीद करें कि वह दोबारा हमला नहीं कर सकता है. हमारी सरकार के पास आज कोई तय नीति नहीं है कि तालिबानियों से कैसे निबटेगी. उन्हें यह भी नहीं पता कि वह क्या कर रहे हैं और क्या करना चाहते हैं? पाकिस्तान का भविष्य आज खतरे में है. सभी राजनीतिक दल एक दूसरे पर आरोप लगा रहे है कि दूसरा इस हालत के लिए जिम्मेदार है. पाकिस्तानी सीनेट में विपक्ष के वासिम सज्जाद ने पाकिस्तान की संवैधानिकता पर ही सवाल खड़ा कर दिया है. वह कहते हैं, *कहां है संविधान? पाकिस्तान सरकार स्वात मामले पर अधर में लटकी है.* सज्जाद ने कहा कि संविधान में ज़रूरी संशोधन करने की जरूरत है जिसमें सभी प्रमुख राजनीतिक दलों की सहमति होनी चाहिए. उन्होंने यह भी साफ किया कि पाकिस्तान को अमेरिका की नई नीति पर भी सीधी बात करनी चाहिए और उसे अपना पक्ष बुलंद करने की जरूरत है.

उन्होंने सभी पार्टियों को एकजुट होकर आतंकवाद और बलूचिस्तान की समस्या से निपटने के लिए बातचीत के जरिए हल खोजने के प्रयास किए जाने की बात कही. संसद की संयुक्त बैठक में राष्ट्रपति जरदारी के भाषण के दौरान उन्होंने कहा कि देश में संविधान की सर्वोच्चता कायम करने और स्वात, बुनेर, सांगला समेत सभी कबीलाई इलाकों में कानून-व्यवस्था हर कीमत पर कायम की जानी चाहिए. इसके साथ, ही यह भी कहा कि अमेरिका और यूरोपीय देशों को पाकिस्तान की सैन्य क्षमता बढ़ाने में मदद के लिए सामने आना चाहिए. अमेरिका के विशेष दूत रिचर्ड हॉलब्रुक के अधिकार क्षेत्र का विस्तार कर भारत और कश्मीर मामले को भी जोड़ा जाना चाहिए. उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि भारत के साथ सभी मामलों को शांतिपूर्ण ढंग से बातचीत के जरिए निपटाया जाना चाहिए.

आज तालिबान पाकिस्तान को हाशिए पर रख चुका है. हज़ारों की संख्या में अत्याधुनिक हथियारों से लैस तालिबानी लड़ाके अवाम के बीच बेखौफ़ घूम रहे हैं. शरियत की अपनी परिभाषा थोपते ये तालिबानी मुसलमान, इस्लाम तक को नकार रहे हैं. पाकिस्तान पर इनकी छाप कुछ इस तरह पड़ चुकी है कि आज पाकिस्तान के गांवों में बच्चे कंचों की जगह एके-47 की खाली गोलियों से खेल रहे हैं. उनकी मासूमियत को भी यह एहसास है कि यह खाली गोली किसी की जान ले चुकी होगी.

तालिबान ने पिछले कुछ सालों में पाकिस्तानी लड़ाकों की एक फौज़ भी तैयार कर ली है. इसके साथ ही तालिबानी समर्थकों की तादाद भी खौफ़ और ख़ूनख़राबे के चलते लगातार बढ़ रही है.

शहर में होने वाले कार-बम धमाकों से साफ अंदाजा लगाया जा सकता है कि इस्तेमाल किया गया आरडीएक्स अव्वल दर्जे का रहा होगा, जो किसी मामूली संगठन के हाथ नहीं लग सकता. इसी फाइनेंसिंग के जरिए खासी रक़म उन युवाओं को दी जा रही है, जिनका इस्तेमाल तालिबान मानव बम बनाने में कर रहा है. आज तालिबान के पास पाकिस्तान में सैकड़ों ऐसे मानव-बम बने युवा हैं जो एक इशारे पर अपनी ज़िंदगी ख़त्म करने के लिए तैयार हैं. तालिबान के पास मौजूद ज़्यादातर हथियार और गोला बारूद विदेश में बने हुए हैं और अचरज की बात यह कि किसी भी हथियार को देख कर यह नहीं बताया जा सकता कि वह किस देश से बन कर तालिबान के हाथ तक पहुंचा है. लेकिन इससे इतना ज़रूर साफ होता है कि इन हथियारों से पहचान हटाने का काम उसी फैक्टरी में किया गया होगा जहां इन्हें बनाया गया है.

स्वात घाटी में पाकिस्तान सरकार के साथ हुए समझौते ने जहां एक तरफ यह दिखा दिया कि आतंकियों की ताक़त के आगे पाकिस्तान सरकार के पास कोई विकल्प नहीं बचा है, वहीं धीरे-धीरे यह भी साफ हो गया कि स्वात समझौता किसी शांति के लिए नहीं बल्कि तालिबानियों ने अपने नेटवर्क के इस्तेमाल के लिए किया. बुनेर पर पहले तालिबानियों का कब्जा और फिर पाकिस्तानी सेना की बुनेर वापस लेने के संघर्ष में तालिबान की तैयारी साफ दिख रही है. आज तालिबान पाकिस्तान के हर इलाके में अपनी पैठ बना चुका है. इसके अलावा हर अहम शहर में तैनात उसके लड़ाके आपस में लगातार संपर्क में भी बने हुए हैं. सभी लड़ाके आधुनिक संचार में माहिर हैं, स्वचालित हथियारों में उनका हाथ किसी फौज़ी की तरह काम करता है. जान देकर भी ख़ूनख़राबे का उनका मकसद उन्हें फौज़ी से आगे रहने में मदद कर रहा है. वहीं दूसरी तरफ, पाकिस्तान सरकार के पास तालिबानी ताक़त से लड़ने के लिए कोई नीति नहीं है. आज तालिबान से बढ़ते खतरे को देखते हुए पाकिस्तान को भारत सीमा पर तैनात टुकड़ियों को पाकिस्तान में छिपे दुश्मनों से लड़ने के लिए लगाया जा रहा है.

आज पाकिस्तान के अस्तित्व पर सवालिया निशान लग चुका है. दुनियाभर से यही आवाज़ आ रही है कि पाकिस्तान का अस्तित्व मिटने की कगार पर है. आर्थिक मंदी जहां दुनियाभर के लिए खतरा बन गई है, वहीं आतंकवाद एक दूसरा खतरा बन चुका है, जिसकी जड़ें आज पाकिस्तान में खोजी जा रही हैं. दस साल पहले जहां मुशर्रफ ने देश में भ्रष्टाचार को मुद्दा बनाकर नवाज शरीफ सरकार का तख्ता पलट दिया था, वहीं मुशर्रफ शासन के इन दस सालों में पाकिस्तान को एक ऐसे अंधेरे मोड़ पर खड़ा कर दिया जहां उसके पास चुनी हुई होकर भी कमज़ोर सरकार, आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध लड़ रही एक कमज़ोर सेना, जिहाद का यलगार किए हुए कौम मौजूद है. पाकिस्तान को आज ज़रूरत है इन सभी कड़ियों के कमज़ोर पहलुओं को दरकिनार करने की ताकि अवाम सशक्त किरदार निभाने लायक बन सके. जम्हूरियत को बचाने की एक सच्ची कोशिश की जा सके. एक ऐसी कोशिश, जो संगीन के साए से पाकिस्तान को आज़ाद करा सके. मेरी पाकिस्तान के अवाम से यह अपील भी है कि उन्हें पाकिस्तान के ताजा सूरतेहाल पर मायूस होने के बजाय उन लोगों से आरपार कि लड़ाई लड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए जो इस्लाम को बदनाम करने की कोशिश कर रहे है. आज हमारा देश, हमारा समाज, हमारा अस्तित्व और हमारा राजनीतिक ढांचा चरमरा रहा है. इम्तिहान की इस घड़ी में हमें अपनी एकजुटता के जरिए समाज और देश के इन दुश्मनों को परास्त करना है. हम अपनी नागरिक जिम्मेदारियों से मुंह नहीं मोड़ सकते हैं.अब्राहम लिंकन के शब्दों में-

इस तरह अपना रास्ता अख्तियार कर, बेपर्दा और पाक मकसद से हमें खुदा पर यकीन करते हुए आगे बढ़ना है, बेखौफ और ख़ुदी को बुलंद करके.

अगला नंबर कराची का!

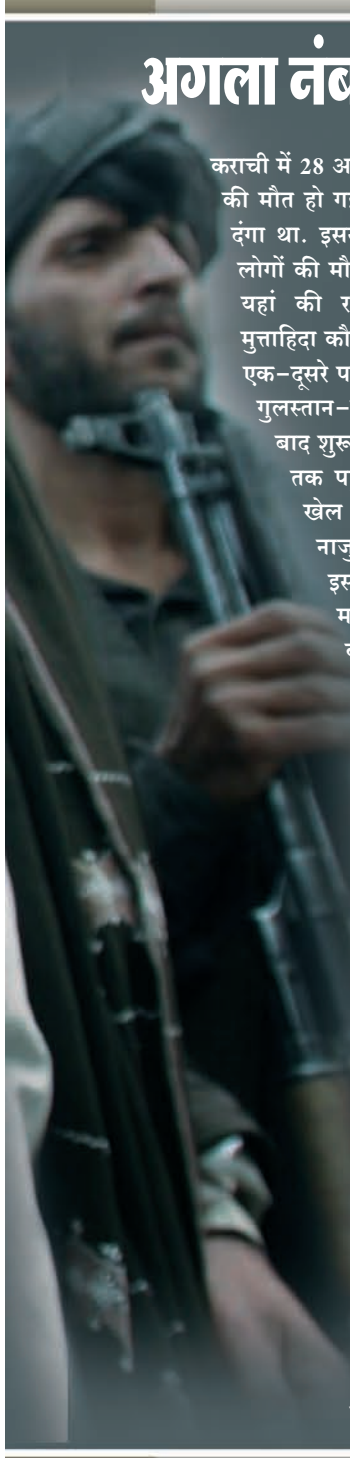

कराची में 28 अप्रैल को हुए जातीय दंगों में 27 लोगों की मौत हो गई. पिछले तीन महीनों में यह तीसरा दंगा था. इससे पहले के दंगों में भी लगभग 50 लोगों की मौत हुई थी. इस कत्लोगारत के दौरान यहां की राजनीतिक पार्टियां, खासतौर पर मुत्ताहिदा कौमी मूवमेंट और अवामी नेशनल पार्टी एक-दूसरे पर इल्ज़ाम लगाती रहीं. हाल का दंगा गुलस्तान-ए-जौहर में दो गुटों में मारपीट के बाद शुरू हुआ जो बाद में कराची युनिवर्सिटी तक पहुंच गया और छात्रों के बीच ख़ूनी खेल शुरू हो गया. जल्द ही हालात इतने नाजुक हो गए कि पूरा कराची शहर इसकी आग में झुलसने लगा. लोगों का मानना है कि इन दंगों के पीछे दो गुटों की राजनीतिक साजिश है, जिसके चलते भविष्य में भी ऐसे दंगों को अंजाम दिया जाता रहेगा.

आख़िर इन दंगों के पीछे क्या वज़ह है? इन दंगों के कई कारण बताए जा रहे हैं. ज़्यादातर लोग इन दंगों को बाहरी साजिश का नतीजा मान रहे हैं, जिसका मकसद देश की आर्थिक हालात को लाचार करना है. ऐसी भी ख़बरें आ रही हैं कि तालिबान अब कराची शहर को अपने कब्जे में लेना चाहता है और वह इलाके के दो गुटों को आपस में लड़ा कर खुद के लिए ज़मीन तलाश रहा है. मुत्ताहिदा प्रमुख अल्ताफ हुसैन भी इसी से सहमति जताते हैं. उनका दावा है कि तालिबान कराची तक पहुंच चुका है और जल्द ही वह कराची में वारदातों को अंजाम देने लगेगा और शरियत के तालिबानी दायरे में कराची को भी लाने की कोशिश शुरू कर देगा.

तालिबान कर रहा है इस्लाम को शर्मसार

इस्लाम में सुलह-रहमी दूसरे मजहब के लोगों के साथ मिलकर काम करने को कहते हैं, लेकिन आज पाकिस्तान के तालिबानी आतंकियों के लिए यह अल्फाज़ बेमानी हो चुके है. इसीलिए कोहट में सिख समुदाय के लोगों के साथ बर्बरता और कायरता का रवैया अपनाया जा रहा है. कोहट में तालिबान ने 29 अप्रैल को सिख समुदाय पर जमकर कहर बरपाया. तालिबान ने उन 11 सिख परिवारों के घरों को तबाह कर दिया जिन्होंने जज़िया देने से मना कर दिया था. सिख मकानों को तोड़े जाने की मंज़ूरी तहरीक-ए-पाकिस्तान तालिबान ने उस वक्त दी, जब उसी दिन जज़िया दिए जाने की समय सीमा समाप्त हो गई थी.

इससे पहले, इस इलाके में शरियत कानून लागू होने के बाद तालिबानियों ने वहां बसे गैर-मुसलमानों पर जज़िया लागू कर दिया था. इस इलाके में तकरीबन 30 से 35 सिख परिवार रहते थे जो तालिबान की दया पर आश्रित थे. तालिबान ने इन सिख परिवारों पर पंद्रह लाख रुपए का जज़िया टैक्स लगाया था.

रकम न दे पाने की सूरत में सिख परिवार कुछ दिन पहले ही फिरोज़ खेल इलाके को छोड़ कर पास के मिरोजाई इलाके में चले गए थे. 29 अप्रैल को जज़िया की मियाद खत्म होते ही तालिबानियों ने दो सिखों की दुकान पर कब्जा कर लिया और तकरीबन 11 और सिखों के मकान और संपत्ति को जला कर राख कर दिया. इस घटना के बाद से ही स्वात और आसपास के इलाकों से सिख परिवारों का पलायन शुरू हो चुका है. वैसे, पाकिस्तानी राष्ट्रपति ने भारत को चिंता न करने की सलाह देते हुए इसे पाकिस्तान का आंतरिक मामला बता दिया, लेकिन इतना तो तय है कि भारत की चिंताएं लगातार बनी रहेंगी और वह हालात पर करीबी नज़र रखेगा.

बुनेर में चुनौती

पाकिस्तानी सेना और तालिबान के बीच बुनेर में 28 अप्रैल को उस वक्त लड़ाई शुरू हो गई, जब मिलिट्री इंटेलिजेंस ने फोन टैपिंग में स्वात में तालिबान के प्रमुख मौलाना फजलुल्लाह की उसके कमांडरों से बातचीत सुनी. इस बातचीत में कहा गया कि बुनेर को तालिबानी कब्जे में लेने की कवायद वहां से बाहर निकलने की आड़ में की जाएगी और पाकिस्तानी फौज को आखिरी वक्त तक गुमराह रखा जाएगा. इस खुलासे के बाद आनन-फानन में पाकिस्तानी फौज ने 6000 फौजियों की टुकड़ी बुनेर को आतंकियों से खाली कराने के लिए लगा दी. पाकिस्तानी एयरफोर्स के लड़ाकू विमान भी इस लड़ाई में पाकिस्तानी सेना की मदद कर रहे हैं. इससे पहले पाकिस्तानी सेना ने दीर में 70 आतंकवादियों को मार गिराने का दावा किया है और उम्मीद जाहिर की है कि बहुत जल्द दीर इलाके से तालिबानियों को खदेड़ दिया जाएगा. पााकिस्तान के इंटर सर्विसेज के डायरेक्टर जनरल अथर अब्बास का कहना है कि तालिबान 2-3 अप्रैल से ही बुनेर में किलेबंदी करने में लग गए थे और वहां पर अपहरण, पुलिसवालों के कत्ल और इलाकाई लोगों को स्वात में ट्रेनिंग के लिए जबरन भेजने की कार्रवाई को अंजाम दे रहे थे. अब्बास का यह भी दावा है कि तालिबानी बुनेर इलाके में बंकर बनाने की भी शुरुआत कर चुके थे.

28 अप्रैल से चल रही इस लड़ाई में अबतक तीस हजार से ज्यादा इलाकाई लोग बुनेर छोड़ कर जा चुके है, और अगले कुछ दिनों में और हज़ारों लोग वहां से बाहर निकलने की फिराक में है. आतंक के खिलाफ ज़ारी इस युद्ध का एक पहलू यह भी है कि जहां अमेरिकी और यूरोप से आ रही आर्थिक मदद महज सेना के लिए इस्तेमाल की जा रही है, वहीं सैकड़ों की संख्या में घर छोड़ने को मजबूर बुनेर के लोगों की परवाह किसी को नहीं है. उनके पास न ही रुपए हैं और न ही पेट भरने के लिए अनाज. आतंक की इस लड़ाई में या तो उनका सबकुछ तबाह हो चुका है या वह अपना सबकुछ बुनेर में आतंकियों के हवाले कर अपनी जान बचाने के फिराक में आसपास के इलाकों में भाग रहे है. पाकिस्तान सरकार जहां इतनी संख्या में तैनात सैन्य बल के रखरखाव और जरूरत को ही किसी तरह पूरा कर पा रही है, उसके सामने वहां के लोगों की समस्या एक गंभीर मुद्दा बन गया है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

पत्रिकाओं के बहाने ...

अनंत विजय

समीक्षक और स्तंभकार भारत भारद्वाज ने 25 जून 1999 को मुझे एक भारी-भरकम पत्रिका का प्रवेशांक भेंट किया, जो आकार-प्रकार और अपने सादे कवर की वजह से आकर्षक लग रहा था. उस पत्रिका का नाम था-बहुवचन, प्रकाशक था महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय और पत्रिका के प्रधान संपादक थे विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति अशोक वाजपेयी. संपादक के रूप में नाम छपा था पीयूष दईया का. आज से लगभग दस वर्ष पूर्व जब यह पत्रिका छपी थी, तब पीयूष दईया का नाम हिंदी में नया और अनजाना-सा था. बहुवचन के साथ ही विश्वविद्यालय ने दो और पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ किया था- पुस्तक वार्ता, जिसके प्रधान संपादक भी अशोक वाजपेयी थे और संपादक थे पत्रकार राकेश श्रीमाल. तीसरी पत्रिका अंग्रेजी में थी- हिंदी लैंग्वेज, डिस्कोर्स एंड रायटिंग. इसके संपादक थे रुस्तम सिंह.

जब इन पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ था, तो इस पर जमकर बहस चली थी. अशोक वाजपेयी के विरोधियों का आरोप था कि विश्वविद्यालय का काम पत्रिकाएं छापना नहीं है. लेकिन इन आरोप लगाने वालों को यह ज्ञान नहीं था कि देश-विदेश के लगभग सभी विश्वविद्यालयों से पत्रिकाएं निकलती हैं. चाहे वह कैंब्रिज हो, ऑक्सफोर्ड हो या फिर लखनऊ या भागलपुर विश्वविद्यालय. यह अवश्य है कि भारत में विश्वविद्यालयों की पत्रिकाएं सिर्फ रस्मी तौर पर निकलती हैं, जिन्हें छपने के बाद गोदामों में ठूंस दिया जाता है, और कालांतर में जिसे रद्दी के भाव बेच दिया जाता है. क्या मुझे यहां यह कहने की ज़रूरत है कि ऑक्सफोर्ड और कैंब्रिज से निकलने वाली पत्रिकाओं की विश्व में क्या प्रतिष्ठा है?

लंबे समय से विश्वविद्यालय के हिंदी विभागों में कुंडली मारकर बैठे साहित्य के आचार्यों को यह बात हजम नहीं हो रही थी कि हिंदी के नाम पर खुले विश्वविद्यालय में उनकी कोई पूछ नहीं हो रही है. नए-नए *लौंडे-लफाड़ों* को पत्रिका का संपादक बना दिया गया है और वर्षों से साहित्य साधना में लीन आचार्यों की प्रतिष्ठा और निष्ठा को दरकिनार कर दिया गया है. अशोक वाजपेयी पर जमकर हमले हुए, लेकिन *बहुवचन* और *पुस्तक वार्ता* नियमित रूप से पांच साल निकलती रही. *हिंदी लैंग्वेज, डिस्कोर्स एंड रायटिंग* का प्रकाशन अवश्य बाधित हुआ, जिसकी वजह तत्कालीन कुलपति ही बता सकते हैं. अशोक वाजपेयी के बाद जी गोपीनाथन कुलपति बने. उनके कार्यकाल में धीरे-धीरे इन पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद हो गया और साहित्य जगत को ख़बर भी नहीं लगी.

अब नए कुलपति विभूति नारायण राय के प्रभार संभालने के बाद फिर से इन तीनों पत्रिकाओं- बहुवचन (संपादक-राजेंद्र कुमार), पुस्तक वार्ता (संपादक-भारत भारद्वाज), हिंदी लैंग्वेज, डिस्कोर्स एंड रायटिंग (संपादक-ममता कालिया)-का प्रकाशन शुरू हुआ है. दस वर्षों में बहुवचन का टैग लाइन भी बदल गया है, जो पत्रिका के बदले हुए मिज़ाज का संकेत है. प्रवेशांक में लिखा था-बहुवचन, साहित्य भाषा शोध विचार की पत्रिका. लेकिन अब बहुवचन- बहुसुमन, बहुरंग निर्मित एक सुंदर हार-हो चुका है. इन दोनों टैग लाइन पर ही अगर हम विचार करें, तो पत्रिका के चरित्र में बदलाव को साफ तौर पर परिलक्षित किया जा सकता है. पहले अंक में *यह प्रवेशांक* शीर्षक से एक टिप्पणी थी, जिसमें लिखा गया था कि यह प्रयत्न हिंदी में सक्रिय अनेक पीढ़ियों, अनेक दृष्टियों और शैलियों के लेखकों को एकत्र करने का है. जो उस अंक में दिखा भी था. *बहुवचन* के नए अंक में संपादकीय का शीर्षक देखिए - यह नवोन्मेषांक. यह हिंदी इतनी कठिन है कि आम पाठकों को भी समझ में नहीं आएगी. संपादकीय में भी जिस शास्त्रीय शब्दावली का प्रयोग किया गया है, वहे न सिर्फ उसे जटिल बना देता है बल्कि बोझिल भी. महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय का एक उद्देश्य पूरे विश्व में हिंदी को इंटरनेशनल भाषा के तौर पर मान्यता दिलाना भी है. लेकिन अगर पत्रिका के संपादक ही इस तरह की जटिलतम भाषा का इस्तेमाल करेंगे तो हिंदी पढ़ने-समझने वाले तो इससे दूर हो ही जाएंगे. ग़ैर हिंदी भाषी के तो पास आने का सवाल ही नहीं उठता.

बहुवचन के संपादक राजेंद्र कुमार ने अपने संपादकीय में लिखा है-यह शिकायत प्रायः सुनने को मिलती है कि हमारे विश्वविद्यालय अकादमिक जड़ता के भव्य ठिकाने होते जा रहे हैं. ख़ासतौर से हिंदी भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में लगे लोगों के बारे में आम धारणा यह है कि भाषा और साहित्य उनके लिए वहीं तक महत्वपूर्ण है जहां तक वह उनकी आजीविका का विषय बनता हो. जिज्ञासा का विषय वह बने, इसका क्या लाभ. अपने ज्ञान के स्तर को अद्यतन बनाने में उनकी अधिक रुचि नहीं, जितनी अपनी सुख-सुविधाओं को अद्यतन

बनाने में. और *बहुवचन* का यह पूरा अंक इस आम धारणा को पूरी तरह से नहीं तो आंशिक तौर पर अवश्य ही मजबूत करता है. इसके अलावा अगर हम बहुवचन के जनवरी-मार्च 2009 के अंक के लेखकों की सूची पर नज़र डालें तो यह पत्रिका महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की कम, जन संस्कृति मंच की पत्रिका अधिक लगती है.

दूसरी पत्रिका- पुस्तक वार्ता- के संपादक भारत भारद्वाज हैं, जो पिछले दो दशकों से हंस के अपने लोकप्रिय स्तंभ और अन्य पत्र पत्रिकाओं में लेखकों की ख़बर लेते रहे हैं. इस पत्रिका के चरित्र में कोई ज़्यादा बदलाव नहीं किया गया है. लेकिन संपादकीय में भविष्य में इसकी प्रकृति में बदलाव के संकेत साफ हैं-यह मुख्यतः समीक्षा (रिव्यू) की पत्रिका है. कुछ-कुछ अंग्रेजी की *बिब्लियो* और *द वीक रिव्यू* की तरह. लेकिन भविष्य में इसकी प्रकृति में बदलाव करते हुए सृजनात्मकता और समकालीन वैचारिक विमर्श का उन्मुक्त मंच बनाने की मेरी आकांक्षा है. लोकार्पण समारोह में विश्वविद्यालय के कुलाधिपति नामवर सिंह ने भारत भारद्वाज को बहुपठित और अद्यतन सूचनाओं से लैस लेखक बताते हुए अपनी अपेक्षाएं भी जाहिर की थीं. पुस्तक वार्ता के ताजे अंक में कुंवर नारायण पर पठनीय सामग्री है. बुजुर्ग आलोचक नंदकिशोर नवल ने अपनी याददाश्त के आधार पर पुस्तकों की एक लंबी सूची गिना दी है, कुछ रोचक प्रसंगों के साथ. इस अंक की एक विशेषता साहित्य कोलाहल है, जिसे प्रज्ञाचक्षु के छद्म नाम से कोई लिख रहा/रही है. यह स्तंभ काफी रोचक और दिलचस्प जानकारियों से भरा है. लेकिन पुस्तक वार्ता की आत्मा भी बिहार की ओर झुकी नज़र आती है. बावजूद इसके, आनेवाले दिनों में यह पत्रिका हिंदी में सार्थक हस्तक्षेप की आहट तो दे ही रही है.

वरिष्ठ लेखिका ममता कालिया ने *हिंदी लैंग्वेज, डिस्कोर्स एंड रायटिंग* का संपादन किया है. इस पत्रिका पर हिंदी में जो कुछ महत्वपूर्ण लिखा जा रहा है या लिखा जा चुका है उसे अंग्रेजी में अनूदित करा कर विश्व पटल पर पेश करना है. ममता कालिया जब इस पत्रिका की संपादक बनी थीं, तब विश्वविद्यालय से जुड़ी गगन गिल ने अच्छा खासा विवाद खड़ा कर दिया था, जिसे *जनसत्ता* के संपादक ओम थानवी ने भी हवा दी थी. लेकिन अब जब पत्रिका छपकर आई, तो तमाम विवादों पर विराम लगा गया. इस पूरी पत्रिका में रचनाओं और रचनाकारों के चयन में बेहतरीन संपादकीय दृष्टि को साफ तौर पर परिलक्षित किया जा सकता है. रचनाकारों के चयन में ममता कालिया पर यह आरोप है कि उन्होंने अपनी पत्रिका में पति रवींद्र कालिया की रचना का अनुवाद छापा. लेकिन आलोचना करने वाले यह भूल जाते हैं कि रवींद्र कालिया हिंदी के एक महत्वपूर्ण लेखक हैं और कोई भी संपादक उनकी रचनाएं छापने को उत्सुक रहता है. लेकिन सवाल यह उठता है कि क्या रिश्तेदार होने की वजह से ही सिर्फ लेखक को दरकिनार करने का हक़ संपादकों को है? कतई नहीं. *हिंदी लैंग्वेज, डिस्कोर्स एंड रायटिंग* की सबसे बड़ी कमजोरी अनुवाद है. ज़्यादातर अनुवाद में वह प्रवाह और रवानगी नहीं है जो मूल रचनाओं में है. इसके अलावा इस पत्रिका में अगर तीन महीनों में हिंदी की महत्वपूर्ण गतिविधियों को शामिल किया जा सके तो ग़ैर हिंदी भाषियों की जानकारी समृद्ध होगी और विश्वविद्यालय के उद्देश्य की पूर्ति भी.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

कथा स्वामी रामानंद की

ईसा की चौदहवीं-पंद्रहवीं सदियों में पूरे भारतवर्ष में साधारण लोगों की चेतना और रचनात्मकता ने भक्ति काव्य के जरिए सामाजिक समता और वैयक्तिक गरिमा के सपने देखे. भक्ति-कविता केवल साहित्य के इतिहास की वस्तु नहीं, समाज के इतिहास का निर्माण करने वाली शक्ति भी सिद्ध हुई. उत्तर भारत में भक्ति को लाने का श्रेय रामानंद को और लोक-व्यापी बनाने का श्रेय कबीर को दिया जाता रहा है- भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाए रामानंद, परगट कियो कबीर ने सप्तदीप नवखंड. लोक परंपरा रामानंद को *जात-पात पूछै नहीं कोई* की घोषणा करके सामाजिक रूप से समावेशी भक्ति धारणा का प्रतिपादन करने का श्रेय देती आई है. रामानंद के शिष्यों में सबसे अधिक प्रख्यात वे हैं जिन्होंने लोकभाषा में कविता की, और जिनका जन्म तथाकथित निम्न जातियों में हुआ था. काशी के जुलाहे कबीर के अलावा रामानंद के शिष्यों में रैदास, धन्ना जाट और सैन नाई के साथ पीपा को गिना जाता है. पीपा ने राजा होते हुए भी दर्जी का पेशा अपना लिया था. पद्मावती नाम की साधिका भी रामानंद की शिष्या थीं. भक्तमाल में नाभादास रामानंद को दूसरी बार सेतु बांधने वाला रघुनाथ (या रघुनाथ के द्वारा बांधा गया दूसरा सेतु!) कहते हैं. रामानंद की ब्राह्मणवाद विरोधी लोकधर्मिता और रामानंद-कबीर संबंध पर मध्यकाल में किसी को संदेह नहीं था, लेकिन आजकल बहुत से लोग मानने लगे हैं कि रामानंद तो शास्त्रसिद्ध संस्कृत आचार्य थे, उन का समय भी कबीर से कोई सौ साल पहले का है. ऐसे में रामानंद और कबीर के बीच किसी संबध का सवाल ही कहां पैदा होता है ? यह जो मान लिया गया है, सो कितना साधार है और कितना निराधार? जिन साक्ष्यों को प्राचीन कहा जाता है, वे कब के हैं? ऐसे साक्ष्यों की निर्मिति और स्वीकृति का अपना इतिहास क्या है ?

उपरोक्त प्रश्नों के साथ मैं पिछले कई बरसों से रामानंद की खोज करता रहा हूं. रामानंद के नाम से उपलब्ध संस्कृत रचनाएं उनकी हिंदी रचनाओं से ज्यादा प्रामाणिक मान ली गई हैं, जबकि रामानंद की हिंदी-रचनाएं निर्विवाद रूप से प्राचीनतर हैं. रामानंद के बारे में हमारी जानकारी के प्राचीनतर स्रोत भी संस्कृत के नहीं, देशभाषा के हैं. जो कुछ भी हम उनके बारे में प्रामाणिक रूप से जानते हैं, वह हमें भक्तमालों और परचइयों से ही प्राप्त हुआ है. मध्यकाल के संस्कृत स्रोत तो रामानंद का उल्लेख भी नहीं करते. संस्कृत रचनाओं का जिक्र बीसवीं सदी में ही मिलता है. रामानंद के हिंदी पद आदिग्रंथ, रज्जब और गोपालदास की सर्वंगियों के अलावा अन्य मध्यकालीन हिंदी पांडुलिपियों में भी मिलते हैं. अगस्त्य संहिता के भविष्योत्तर खंड के आधार पर रामानंद का जीवनकाल 1299-1410 माना जाता है. वास्तविकता यह है कि अगस्त्य संहिता में कोई भविष्योत्तर खंड है ही नहीं. इस संहिता की रचना रामानंद और कबीर के समय के पहले हो चुकी थी, जबकि भविष्योत्तर खंड बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में रच कर इसमें जोड़ दिया गया. रामानंद कबीर के समकालीन और समानधर्मा थे. उनकी संवेदना निर्गुण संतों के निकट थी. ऐसी स्थिति में रामानंद के क्रांतिकारी व्यक्तित्व और कबीर के साथ उनके संबंध को नकारने का कोई तार्किक और ऐतिहासिक आधार नहीं है.

पुरुषोत्तम अग्रवाल

feedback.chauthiduniya@gmail.com

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि अपने पिता की मौत के बाद इक़बाल फिर से काम की तलाश में मोगल के पास पहुंचा. इस अंक में पढ़िए क्या इक़बाल जुर्म की दुनिया में वापस लौट गया...

मुसलमान

आबिद सुरती

मेहनत-मज़दूरी तो गधे भी करते हैं, थोड़ी अक़्ल भी होनी चाहिए. उसमें अक़्ल भी है और ईमानदारी भी.

उसे वापस बुला लो.

मोगल ने पलटकर देखा तो इक़बाल कहीं नज़र नहीं आया. फिर भी उसने यह अंदाज़ लगा लिया, इक़बाल अधिक दूर नहीं गया होगा. फ़ौरन उसने चाय की गुमटी पर काम करने वाले एक लड़के को उसके पीछे दौड़ाया.

इक़बाल वापस आकर मोगल के सामने खड़ा हुआ तो इस बार उसके चेहरे पर नई उम्मीद की झलक थी.

इन साहब को पहचानते हो? सरदार जी की दिशा में इशारा करते हुए मोगल ने नए सिरे से शुरुआत की.

इक़बाल ने सरदार जी पर एक नज़र डालकर न में सिर हिला दिया.

इनका नाम जसबीर सिंह है.

इक़बाल ने फिर उसके सामने देखा.

सरदार जी ने खुद ही उससे प्रश्न किया, मेरे साथ काम करोगे?

इक़बाल ने सही जवाब देने से पहले सवाल किया, काम क्या है?

स्टोरिंग का.

मेरे पास जगह नहीं.

घर तो है न.

उसने कहा, हां पर छोटा, बहुत छोटा. क्या स्टोर करना है?

शराब की बोतलें.

वह कांप उठा, नहीं, यह मुमकिन नहीं.

क्यों?

बोतलें देखकर कोई पड़ोसी पुलिस में ख़बर कर देगा तो मेरी छुट्टी हो जाएगी.

जसबीर सिंह हंसने लगा. काली घनी दाढ़ी-मूंछों के बीच उसके सफ़ेद दांत चमक उठे. फिर स्पष्ट करते हुए बताया, बोतलें खुली नहीं होंगी.

तो?

बोरियों में बंद रहेंगी. उसे अधिक स्पष्ट करने की ज़रूरत लगी, अनाज की बोरियां कैसी होती हैं? बिलकुल उसी तरह.

सब कुछ तय हो गया. एक बोरी के उसे पांच रुपए मिलने वाले थे. करीब पचास से साठ बोरियां घर में रखने की व्यवस्था करनी थी. दो से तीन दिन के अंदर जसबीर सिंह का आदेश मिलते ही पूरा माल रफ़ा-दफ़ा करके नया माल लेना था. मतलब कि महीने में लगभग दो हज़ार की आमदनी होनी थी. पर सवाल यह था कि अपनी छोटी कोठरी में बोरियां रखी कहां जाएं?

घर आकर इक़बाल अपनी दीवारों को नए किराएदार की नई नज़र से देखने लगा. लगभग आधी खोली पलंग ने घेर रखी थी. बीच में थोड़ी जगह छोड़कर कोठरी के बाक़ी हिस्से में एक अलमारी, दो कुर्सियां थीं. एक कोने में रसोई और चौका था.

क्या ढूंढ़ रहे हो? खोली की हर चीज़ को नज़रों से टटोलते हुए बेटे को देखा तो गुलबानू से बिना पूछे नहीं रहा गया.

रास्ता. मां की ओर देखे बिना ही उसने जवाब दिया.

गुलबानू हंस पड़ी. फिर उसने कहा, पागल तो नहीं हो गया? रास्ता बाहर होता है, घर में नहीं.

उसने स्पष्ट किया, घर में पचासेक बोरियां कैसे रखी जाएं, इसी का मार्ग खोज रहा हूं, ताकि महीने में दो हज़ार रुपए कमा सकूं.

गुलबानू का चेहरा खिल उठा. अब वह भी बेटे के साथ सोचने लगी. अलमारी बेचकर जगह बनाई जा सकती है? कुर्सियां निकाल दें तो? पलंग को खिड़की के पास से खिसका कर दाहिनी तरफ़ की दीवार के पास लिया जा सकता है ...

अंत में इक़बाल ने ही तरकीब निकाली. पलंग ही खोल डाला जाए. फ़ौरन वह काम में जुट गया. सबसे पहले उसने पलंग की सारी फल्लियां निकालकर एक तरफ़ रख दीं. फिर पाना लाकर उसके पांवों के मिजागरों को ढीला किया. पलंग के हिस्से एक-एक करके अलग होते गए. आख़िर में उसने सभी हिस्सों को इकट्ठा किया और फल्लियों के पास रख दिया. पलंग खुल जाने के बाद वह छोटी कोठरी जैसे बड़ा कमरा बन गई.

ये बोरियां कैसे और कहां से आने वाली थीं?

सन 1947 में यानी कि आज़ादी के बाद नशाबंदी कानून लगाया गया. साथ ही टैक्सटाइल, ट्रांजिस्टर, सिगरेट जैसी विदेशी चीज़ों पर जबरदस्त कर लगाए गए. परिणामस्वरूप तस्करी के धंधे की कोंपलें फूटीं. पांचवें दशक में इन कोंपलों में से पौधा उगा और साठ के दशक में यह नन्हा पौधा विशाल वृक्ष बन गया.

इन वर्षों में विदेशी शराब की तस्करी का सीधा मार्ग बॉम्बे टु गोवा था.

इसके अलावा ग़रीबों और मज़दूरों के लिए देशी शराब की भट्ठियां घर-घर खुल गईं थीं. सायन-कोलीवाड़ा उसका मुख्य केंद्र था. रामास्वामी वहां का दादा था.

सन 1947 में यानी कि आज़ादी के बाद नशाबंदी कानून लगाया गया. साथ ही टैक्सटाइल, ट्रांजिस्टर, सिगरेट जैसी विदेशी चीज़ों पर जबरदस्त कर लगाए गए. परिणामस्वरूप तस्करी के धंधे की कोंपलें फूटीं.

डोंगरी इलाके में करीम लाला और हाजी मस्तान का राज था, तो सायन-कोलीवाड़ा में रामास्वामी की धाक थी. इस दादा को वरदराजन मुदलियार ने चुनौती दी. रामास्वामी के छक्के छूट गए और इसकी वजह थी.

वरदराजन मुदलियार उर्फ वरदा भाई ने भी अपने जीवन की शुरुआत गोदी से ही की थी. उसका जन्म बंबई के नज़दीक कल्याण में नौ अक्टूबर के दिन हुआ था. उस समय उसका बाप रेलवे में फिटर था. तनख्वाह थी-माहवार बारह रुपए अठारह पैसे.

वरदा और मस्तान के जीवन में बहुत समानताएं हैं. मस्तान ने ग़रीबी के कारण अपनी पढ़ाई छोड़ी थी. वरदा ने भी इसी कारण कोलीवाड़ा में म्युनिसिपल स्कूल छोड़ा था. बचपन में मस्तान चाय की गुमटी पर काम करता था, तो वरदा एक गैरेज में.

उसके बाद दोनों बंदरगाह में आए. सबसे पहले दोनों ने पेंटर का काम किया और उसके बाद जवान होने पर वहीं कुली बने. उसी समय वे एक-दूसरे के संपर्क में आए. इस संपर्क का फायदा वरदा ने उठाया, क्योंकि कुलीगीरी की आड़ में मस्तान ने तस्करी का काम कभी का शुरू कर दिया था. उसके हाथ के नीचे करीब पंद्रह लड़के काम करते थे. उसके सिर पर शहर के हाकिमों की छत्रछाया थी.

इसी समर्थन के बल पर वरदराजन ने रामास्वामी पर हमला कर दिया. यह हमला दुश्मन की छावनी पर धावा बोलते सैनिकों के हमले की तरह सुनियोजित था. रामास्वामी की शराब की भट्ठियां तहस-नहस हो गईं, उसके जुआखाने का छपरा उड़ गया. फर्नीचर का कचूमर निकल गया. उसके जितने आदमी सामने आए, सभी की हड्डी-पसली एक कर दी गई. जो बाकी बचे, उन्होंने वरदा के सामने हथियार डाल दिए.

रामास्वामी सकपका गया. वह कुछ सोचे-विचारे, इसके पहले ही उसका राज-पाट लुट गया. महीनों की लाखों रुपए की आमदनी पर पूर्ण-विराम लग गया. अब उसकी धाक का भी प्रश्न नहीं रहा था. उसने तुरंत निर्णय लिया और चौबीस घंटे के भीतर बंबई छोड़कर विमान में बैठा और मद्रास चला गया.

वरदराजन मुदलियार की सायन-कोलीवाड़ा के दादा वरदाभाई के रूप में स्थापना हो गई. अब उसने ख़ुद शराब की भट्ठियां शुरू कीं. लोग निश्चिंत होकर पी सकें उसके लिए पंद्रह बार खोले, जो रात-दिन खुले रहते थे.

वरदा भाई की भट्ठियों में तैयार होती शराब लगभग पूरी बंबई में सप्लाई की जाती थी. पर वह तो सस्ती ठर्रा थी. मज़दूरों के लिए थी. बंबई के सेठों, पढ़े-लिखे मध्यम वर्ग के लोगों को स्कॉच चाहिए थी. बंबई और गोवा के बीच आवागमन बढ़ गया.

बंबई में गोवा की शराब फेनी के साथ स्कॉच, रम और ब्रांडी की मांग भी उतनी ही थी. जसबीर सिंह की लारियां गोवा और बंबई के बीच दौड़ती थीं. ग़ैरक़ानूनी ढंग से आयात करने का उसका धंधा धुआंधार चल रहा था.

गोवा से आने वाली लॉरी में अधिक से अधिक बोरियां लदी रहती थीं. इनमें ऊपर रखी पचासेक बोरियों में नारियल भरे रहते थे और शेष नीचे की बोरियों में दारू की बोतलें. आधी रात के बाद यह लॉरी मुंडागली के बाहर आकर खड़ी हो जाती थीं. बाहर यानी कि पालखी मुहल्ले में.

यह रास्ता और पाला गली के नाम से पहचाना जाने वाला दूसरा रास्ता डोंगरी चारनल से शुरू होकर खड़क की दिशा में समानांतर चले जाते हैं. मुंडागली इन दोनों रास्तों को बीच से जोड़ती हुई बरसाती कीड़े की तरह टेढ़ी-मेढ़ी पड़ी है. इसमें तीन प्रवेश हैं-एक पालागली की ओर से और बाकी दोनों पालखी मुहल्ले की ओर से.(इसी मुंडागली में अज़ीज़ दिलीप के तीन शराब अड्डों में से एक था).

मैंने पूछा-आपके कहने के अनुसार लॉरी मुंडागली के नुक्कड़ पर खड़ी रहती थी तो आधी रात को उसमें से बोरियां उतारकर मकान में ऊपर कैसे चढ़ाई जाती थीं.

सूफ़ी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया- अब मैं अकेला नहीं था, मेरा भी एक गिरोह हो गया था. मेरे अंडर में क़रीब एक दर्जन मलबारी लड़के काम करते थे. मैं उन्हें शाम को सूचना दे देता और आधी रात के बाद वे गली के बाहर आ खड़े हो जाते.

ट्रक आने पर यही लड़के एक-एक बोरी पीठ पर डालकर गली में घुस जाते. गली में तेज़ी के साथ कदम बढ़ाते अब्बासी मंज़िल में प्रवेश करते और सीढ़ियां चढ़कर पहली मंज़िल पर इक़बाल की खोली में बोरियां पटक आते.

बोरियों को व्यवस्थित ढंग से रखकर इक़बाल उसी का पलंग बना लेता और उस पर चादर बिछाकर सो जाता.

यह काम कई दिनों तक बिना बाधा के चलता रहा. सभी कर्जे चुका दिए गए. घर की हालत सुधरने लगी. आर्थिक तंगी भूतकाल की याद बन गई. अब इक़बाल को पानी के हंडे उठाकर ऊपर ले जाने की ज़रूरत नहीं थी. अब उसे पालागली में बैठकर चिक्की और खट्टी-मीठी गोलियां बेचने की ज़रूरत नहीं थी. उसकी पढ़ाई भी ठीक ढंग से चल रही थी.

उसकी ख्वाहिश इस साल यानी कि दसवीं कक्षा में पहले नंबर से पास होने की थी, तभी क्राइम-ब्रांच (अपराध शाखा) के अफसर भेसाड़िया को भनक मिल गई. भेड़ासिया इक़बाल की ज़िंदगी में एक अहम भूमिका निभाने वाला था, उसे बाल अपराधी से शातिर अपराधी बनाने वाला था.

इसी उमर में मेरे (लेखक के) जीवन में डॉ. आर.जे. चीनवाला ने प्रवेश किया. मनोविज्ञान के यह डॉक्टर और लेखक-फोटोग्राफर मुझे उन्नति और प्रगति कि दिशा में करने प्रेरित करने वाले थे.

मेरे पिता गुलाम हुसेन के इंतकाल के बाद मैं मानसिक रूप से हिल गया था. क्या वजह इसकी हो सकती है, यह कल्पना मैं नहीं कर सका. कारण? बचपन में मुझे मेरी मां का स्नेह मिला था, पिता का नहीं.

वे दिन आज भी मेरी आंखों में तैरते हैं. पिता की गोद में बैठने के लिए नज़दीक जाता तो वह झल्ला उठते. मां पर चीखते कि कितनी बार कहा है बच्चों को चारपाई के पास मत आने दो.

मां मुझे सीने से लगाकर पति के सामने विवश होकर देखती रहती. उसमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि पति के सामने एक भी शब्द बोल उठती, दो घड़ी बच्चे को प्यार कर लोगे तो कोई आसमान नहीं टूट पड़ेगा.

शब्द उनसे सहन नहीं होते. वे चीख-चीखकर पूरा घर सिर पर उठा लेते.

पर इसका मतलब यह नहीं है कि हमारे पिता हमसे प्यार नहीं करते थे. सच बात यह है कि वे खुद चाहते थे कि हम दोनों भाइयों को गोद में बैठाकर प्यार-दुलार करें, हमारी भोली भाली बेतरतीब बातें सुनें और हमें परियों की कहानियां सुनाएं, लेकिन उनकी मानसिक उलझनें उन्हें

राशिफल

(11 मई से 17 मई तक)

मेष
21 मार्च से 20 अप्रैल

सहयोगियों के साथ घुलने-मिलने से कार्यस्थल पर आपको लाभ हो सकता है. आपके प्रदर्शन का आकलन नई कसौटियों पर हो सकता है, जो आपके हित में ही जाएगा. लोग यह देखेंगे कि आप उनके एजेंडे को लागू करने में किस तरह योगदान कर रहे हैं. व्यवसाय में भीतर से मिले टिप्स आपके लिए फायदेमंद साबित होंगे.

वृष
21 अप्रैल से 20 मई

अगर आप नई शुरुआत चाह रहे थे, तो अब इंतज़ार न करें. आप जिस विशेषज्ञता या गुणों के लिए जाने जाते थे, उन्हें आप अपने अंदर फिर महसूस करेंगे. कोई प्रभावशाली व्यक्ति अपने किसी विशेष काम के लिए भी आपसे संपर्क कर सकता है. व्यवसाय संबंधी मामले आपके नियंत्रण में रहेंगे तथा कार्यान्वयन की गति भी बनी रहेगी, जिससे आप संतोषजनक बने रहेंगे.

मिथुन
21 मई से 20 जून

आप लीक पर चलने के बजाय इस सप्ताह नई रणनीतियों और तरीकों पर अमल करने को तैयार दिखेंगे. इस सप्ताह आप उन विचारों या प्रोजेक्टों को हाथ में ले सकते हैं, जो शुरू होने ही वाले हैं. सीनियर साथियों के साथ ग़लतफहमी पैदा न होने देने के लिए विशेष सतर्कता बरतनी आवश्यक है.

कर्क
21 जून से 20 जुलाई

कुछ ऐसा हो सकता है कि आपके प्रयासों को अप्रत्याशित क्षेत्र से सहयोग मिल जाए. आप कुछ अनोखे विचारों के साथ सामने आ सकते हैं, जिसकी न सिर्फ सराहना होगी बल्कि हर तरफ से उसे हाथों हाथ लिया भी जाएगा. निवेश के मामले में किसी भी फैसले से पहले बाज़ार का अध्ययन कर लें.

सिंह
21 जुलाई से 20 अगस्त

छुट्टी के मौसम में भी आप रचनात्मक बने रहेंगे. आप न सिर्फ नए दृष्टिकोण के साथ आगे बढ़ेंगे बल्कि लक्ष्य पर पूरा केंद्रित भी रहेंगे. अपनी बुद्धिमत्ता के कारण पुरानी बाधाओं से मुक्ति पा सकते हैं. व्यवसाय संबंधी मामले में यह समय आपके लिए लाभदायक साबित होगा. निवेश में भी जल्दी रिटर्न लाने की संभावनाओं की तलाश में रहेंगे.

कन्या
21 अगस्त से 20 सितंबर

छुट्टियों के इस मौसम में नई योजनाओं पर ध्यान केंद्रित करेंगे. अपने लिए कुछ रोमांचक कर सकते हैं. सिंह राशि वालों की तरह ही आप वर्तमान के बजाय भविष्य को अधिक महत्व देंगे और उसके लिए बेहतर योजनाएं बनाएंगे. कठिन परिस्थितियों से संघर्ष करके जल्दी बढ़त हासिल कर लेंगे. अपनी बुद्धि का उपयोग करते हुए आगे बढ़ें. बाधाओं पर विजय प्राप्त करेंगे.

तुला
21 सितंबर से 20 अक्तूबर

जिन मामलों पर आप लंबे समय से काम रहे हैं इस हफ्ते वह लाभकारी परिणाम देंगे. नई परिस्थितियों को समझने की आपकी क्षमता आपको नई पहचान दिलाएगी. किसी कुशल राजनेता की तरह आप सही समय पर सही चोट करेंगे. व्यावसायिक मामलों में बड़े सौदे फायदेमंद होंगे.

वृश्चिक
21 अक्तूबर से 20 नवंबर

यह छुट्टियों का समय है. आप भी इनका मज़ा उठाएंगे लेकिन साथ ही नए काम शुरू करना और बाधाओं को खत्म करना जारी रखें. दूसरे भी इस छुट्टियों के बारे में ही सोच रहे हैं, ऐसे में आपके लिए आगे निकलना फायदेमंद रहेगा. व्यावसायिक मामलों में नए उद्यम शुरू करना आपके एजेंडे में है और इससे लाभ ही होगा.

धनु
21 नवंबर से 20 दिसंबर

लक्ष्य तक पहुंचने के नए आयाम खुल रहे हैं. अगर आप परिणामों की परवाह किए बिना ठोस काम करते रहें तो फायदा और तेज़ी से होगा. इस हफ्ते अपने संबंधों का पूरा इस्तेमाल करना आपके लिए सफलता के नए दरवाजे खोलेगा. व्यवसाय में भी आप महत्वपूर्ण योजनाओं को अमल में ला सकेंगे.

मकर
21 दिसंबर से 20 जनवरी

सकारात्मक सोच और कार्य कुशलता के मेल से आप इस हफ्ते सफलता की ओर बढ़ेंगे. इस हफ्ते मिल रहे परिणाम वर्तमान के साथ भविष्य में भी आपके काम आएंगे. अपनी सहृदयता बरकरार रखें, कठिन परिस्थितियों में यही आपकी मदद करेगा. व्यावसायिक मामलों में बाज़ार के नए बदलाव आपके लिए लाभ के नए आयाम गढ़ रहे हैं.

कुंभ
21 जनवरी से 20 फरवरी

आपका जीवटपन ही आपकी विशेषता है, जिसके बल पर आप लोगों को प्रभावित कर रहे हैं. इस हफ्ते सफलता के लिए आपको इसी जीवटता और तेज़ी से काम करने की क्षमता की ज़रूरत रहेगी. अच्छी बात यह होगी कि आपके पास बेहतरीन उपाय हैं जो आपको आगे ले जा रहे हैं.

मीन
21 फरवरी से 20 मार्च

अपनी छवि में सुधार लाना आपके लिए बहुत ज़रूरी है. हालांकि इस सप्ताह आपके लिए बड़े फैसले लेना आसान रहेगा. आने वाले समय में कठिन परिस्थितियों को फायदे में बदलने की आपकी क्षमता आपका सबसे बड़ा हथियार बनेगी. यूं तो व्यासायिक मामलों में आप लगातार फायदे में हैं, फिर भी नए लक्ष्यों की तलाश में जुटे रहें.

वीनू संदल

feedback.chauthiduniya@gmail.com

गर्मी की छुट्टी

सोनिका अग्रवाल

हमारे सारे पर्व-त्योहार मौसम और ज़रूरतों को ध्यान में रखकर बनाए गए हैं. मई में चूंकि तेज़ गर्मी शुरू हो जाती है, जिससे न सिर्फ सिर गर्म रहने लगता है, बल्कि दिमाग़ पर भी खराब असर पड़ता है. इसलिए समाज ने इस माह में एक नए पर्व का आविष्कार किया-गर्मी छुट्टी. स्कूल-कॉलेज जाने वालों के लिए गर्मी की छुट्टी किसी त्योहार से कम नहीं होती. जैसे लोग त्योहारों या पर्व पर खूब मौज-मस्ती करते हैं और खुश होते हैं, उसी तरह इसका भी आनंद उठाने के लिए मई के दूसरे हफ्ते में लोग बेकरार हो उठते हैं.

इसी को ध्यान में रखते हुए शैक्षणिक सत्र इस तरह बनाए गए हैं कि स्कूल-कॉलेजों में परीक्षाएं समाप्त हो चुकी होती हैं. नए सत्र का समय आ गया होता है. बदलाव से पहले एक अज़ीब-सी उत्सुकता रहती है, जिस पर सोचते-सोचते मन आलस्य से भर उठता है. अभिभावकों का मन भी बच्चों से अलग नहीं रहता. इसलिए स्कूल-कॉलेजों में छुट्टियां पड़ते ही बहुत सारे अभिभावक भी अपने-अपने दफ्तरों से छुट्टी ले लेते हैं. अवकाश के आनंद को भोगने के लिए घूमने-फिरने के कार्यक्रम बन जाते हैं.

इसका एक अन्य और महत्वपूर्ण लाभ भी है. छुट्टी मिलने से युवा वर्ग घर से बाहर निकल कर दूसरे क्षेत्रों में जाता है. इससे एक तरह के समाज का दूसरे समाज से परिचय होता है. इससे संस्कृतियों का आदान-प्रदान बढ़ता है, जो अंततः मन, शरीर के साथ-साथ समाज को भी स्वस्थ बनाने का काम करता है.

इस छुट्टी में रिश्तों को भी मायने मिलते हैं. व्यस्त दिनचर्या में परिवार के सदस्यों के बीच ढंग से संवाद शायद ही हो पाते हैं. लेकिन छुट्टी में इसकी गुंजाइश काफी निकल आती है. और तो और, पीढ़ियों का अंतर ख़त्म करने में भी इसका काफी योगदान रहता है. शहरी परिवार जब गांवों में जाता है, तो बच्चों का नाना-नानी, दादा-दादी से लगाव बढ़ता है. जड़ों से जुड़ने से जीवन में नई ऊर्जा का संचार होता है. जो बच्चे समर कैंप में भी जाते हैं, उन्हें भी सामूहिक जीवन की सीख मिलती है.

तेज रफ्तार ज़िंदगी से थके लोगों में से काफी इस छुट्टी में मसूरी, शिमला और नैनीताल जैसे पर्यटनस्थलों पर जाते हैं. इससे पर्यटन उद्योग को भी लाभ मिलता है और रोज़गार के अवसर भी बढ़ते हैं. लेकिन इधर उच्च वर्ग में इन परंपरागत पर्यटनस्थलों के बजाय विदेश जाने का भी फैशन चल पड़ा है. वैसे छुट्टियां विदेश में बिताने की दो वजहें हैं. एक तो यही कि हाल के वर्षों में लोगों की खर्च करने की क्षमता बढ़ गई है. दूसरे, कंपनियों की आपसी प्रतियोगिता में सस्ते पैकेज बन रहे हैं. आज स्थिति ऐसी है कि देश में घूमने और विदेश में घूमने के बजट में कोई बड़ा अंतर नहीं रह गया है.

sonika.chauthiduniya@gmail.com

तेज रफ्तार ज़िंदगी से थके लोगों में से काफी इस छुट्टी में मसूरी, शिमला और नैनीताल जैसे पर्यटनस्थलों पर जाते हैं. इससे पर्यटन उद्योग को भी लाभ मिलता है और रोज़गार के अवसर भी बढ़ते हैं.

योग : कर्मसु कौशलम्

सनातन धर्म में कर्म की बड़ी महत्ता है. कर्म को ही सबसे महान और बड़ा माना गया है. किसी भी भाग्य या भगवान से बड़ा केवल और केवल कर्म को माना गया है. तभी तो सनातन धर्म की दिशानिर्देशक किताबों में से एक भगवद्गीता में स्वयं योगेश्वर कृष्ण ने पूरा का पूरा अध्याय कर्मयोग को ही समर्पित कर दिया. उन्होंने घोषणा कर दी-कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन. इसका मतलब यह नहीं है कि हमें अकर्मण्यता का पाठ पढ़ाया गया है. यहां भावार्थ केवल यह है कि कर्म करना ही हमारे हाथ में है, उसका परिणाम क्या आएगा, इसकी चिंता करना हमारा काम नहीं है- यत्ने कृते यदि न सिद्धयते कुत्र दोषः- यानी प्रयत्न करने पर भी यदि लक्ष्य प्राप्त न हो, तो किसे दोष दिया जाए?

सनातन धर्म एक जीवनपद्धति है. यह कोई रूढ़ि नहीं है. इसका सीधा-सा मतलब है कि आप अपने काम को करें, वही आपका धर्म है. किसी भी पूजा पद्धति या कर्मकांड से अधिक इसमें कर्म पर ज़ोर दिया गया है-कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करै, सो तस फल चाखा-यानी इंसानों का सारा हिसाब-किताब यहीं इसी दुनिया में होना है. यहां इस बात से भ्रमित होने की ज़रूरत नहीं है कि सनातन धर्म में ही स्वर्ग और नरक की अवधारणा भी है. पहले भी बताया जा चुका है कि अपनी सतत गतिशीलता की वजह से ही सनातन धर्म में परस्पर कई विरोधी सिद्धांत भी मिलते हैं. उस पर बात फिर कभी. फिलहाल तो हम कर्म की प्रधानता पर चर्चा कर रहे हैं.

कर्म शब्द का मूल है कृ, जिसका अर्थ है-करना. कर्म वह क्रिया या काम है, जो हमारे पूरे जीवन को प्रभावित करता है. आजीवन कारण और परिणाम (कॉज़ एंड इफेक्ट) को निर्धारित करता है. यह हमारे विचार और भावनाओं को भी संप्रेषित करता है और हम जो कुछ भी चेतन अवस्था में करते हैं, वह सब हमारे कर्म ही तो हैं. कर्म ही आत्म (द सोल) के सांसारिक जीवनचक्र को निर्धारित करती है. हरेक स्तर पर क्रिया और प्रतिक्रिया- चाहे वह शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक हो- ही कर्म है. यह जान लेना बेहद ज़रूरी है कि कोई भी ईश्वर (मूर्त या अमूर्त) हमें कर्म की गठरी नहीं भेंट करता. यहीं पर सनातन धर्म के भाग्यवादियों को सावधान होने की ज़रूरत है. सनातन धर्म कभी भी हमें भाग्यवादी बनने की सीख नहीं देता. भाग्य जैसा कुछ होता ही नहीं, जैसा कि स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है कि भाग्य तो कायरों का हथियार है, बलशाली तो अपना भाग्य खुद निर्मित करते हैं. इसी बात को अल्लामा इक़बाल ने कुछ इस तरह कहा है- ख़ुदी को कर बुलंद इतना कि हर तक़दीर से पहले ख़ुदा बंदे से खुद पूछे, बता तेरी रज़ा क्या है? इंसानों को उनकी स्वतंत्र इच्छा के मुताबिक ही काम करने के लिए भेजा गया है. हम ख़ुद अपना कर्म निर्मित करते हैं. सनातन धर्म के प्रमुख ग्रंथों में वेद आते हैं, जिसके अनुसार अगर कोई व्यक्ति अच्छे कर्म करता है, तो उसे परिणाम भी अच्छे मिलते हैं और बुरा कर्म करने पर उसका फल भी बुरा ही होता है-बोया पेड़ बबूल का, तो आम कहां से होय? कर्म इंसान के सभी कामों को पूर्णता में व्यक्त करता है. सनातन धर्म में यह भी सिद्धांत है कि हो सकता है कि कुछ कर्मों का फल तुरंत न मिले, लेकिन कभी न कभी जीवन के किसी मोड़ पर उसका फल हरेक व्यक्ति को भोगना ही पड़ता है. कर्म के इसी दर्शन से चार्वाक जैसे दार्शनिकों का नास्तिक दर्शन भी पैदा हुआ, जिन्होंने पुनर्जन्म जैसी मान्यताओं को धता बताते हुए इसी जीवन में सब कुछ भोगने और जी लेने की बात कही. कर्म के चक्र को बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों और वीतराग प्रतिक्रिया से ही जीता जा सकता है.

कठोरता गलत फलों को पैदा करती है, जिसे पाप कहते हैं और अच्छे कर्म मीठे फल देते हैं, जिसे पुण्य कहते हैं. व्यक्ति के जीवन का आधार इन दोनों का सम्यक संतुलन ही होता है.

गीता में कृष्ण ने कर्मयोग का सिद्धांत दिया है. निर्लिप्त रहकर कर्म करना एक बड़ी कला है, जिसे सीखना ही किसी व्यक्ति को महान बनाता है. इसी तरह से योग का चिंतन भी सनातन धर्म का अभिन्न हिस्सा है. सनातन धर्म की आध्यात्मिक धारा किसी भी इंसान के जीवन के सभी पक्षों को तय करती है. योग का अर्थ है जोड़ना. योग और कर्म जब मिल जाते हैं, तो उसी को कहते हैं कर्मयोग. कर्म को आध्यात्मिक स्तर पर जोड़ना ही कर्मयोग कहलाता है. वैसे तो, योग के चार प्रकार हैं. कर्मयोग के अलावा भक्तियोग (जिसमे व्यक्ति अपनी चेतना को आध्यात्मिक स्तर पर पारलौकिक तत्वों के चिंतन में लगाता है), राजयोग (जिसमें व्यक्ति अपनी सांसारिक जिम्मेदारियों को पूरा कर साधना की ओर उन्मुख होता है) और ज्ञान योग (जिसमें व्यक्ति गुरु के पास बैठ कर या किताबों की मदद से ज्ञान की साधना करता है) भी योग के ही प्रकार हैं. योग का सीधा सा मतलब आत्म का ब्राह्मण (परम तत्व) से एक हो जाना है.

ब्राह्मण किसी जाति विशेष का परिचायक न होकर उस परम सत्ता, परम तत्व और पवित्र आत्मा का द्योतक है, जो लगातार प्रगतिशील है, लगातार बढ़ता है और जिसका कभी क्षरण नहीं होता. उस परम तत्व के अनुरूप जब हम अपने कर्मों को निर्धारित कर देते हैं, तो उसी को कर्मयोग कहते हैं और यही सनातन धर्म का मुख्य ध्येय है, जब हम राग और विराग से दूर वीतराग हो जाते हैं-निर्गुण, सगुण ते परे, तहां कबीरा ठाढ़.

व्यालोक

Vyalok.chauthiduniya@gmail.com

हिंदू होने का धर्म

सिरदर्द देने वाले तकनीकी शब्द

ऐसा कर वैप करके सेव करले और अगर काम न करे तो चेकआउट द स्टेटस ऑफ कुकीज – जिस दिन मैंने दो लड़कों को इस तरह की बातें करते सुना तो मुझे लगा कि शायद वह किसी और देश से हैं या पागल हो गए हैं. मैं कुकीज तो कॉफी के साथ बरसों से खा रहा था, पर उनके स्टेटस से कभी पाला नहीं पड़ा था. ख़ैर, ऐसे शब्दों से मेरा पाला लगातार पड़ता रहा और धीरे-धीरे ये ज़िंदगी में शामिल हो गए. हालांकि अभी भी कई लोग ऐसे हैं जिनके लिए ये तकनीकी शब्द काला अक्षर भैंस बराबर ही हैं. ऐसा सिर्फ भारत में ही नहीं है, बल्कि पूरी दुनिया में ऐसे शब्दों को लेकर ज़्यादातर लोग कन्फ्यूज़ रहते हैं. गैजेट ऑनलाइन नाम की वेबसाइट द्वारा कराए गए सर्वे में इंग्लैंड की जनता ने डोंगल को सबसे कन्फ्यूजिंग शब्द चुना है. डोंगल दरअसल कंप्यूटर में लगने वाले सॉफ्टवेयर अडेप्टर को कहते हैं. इसके अलावा कुकीज, डेस्कटॉप, इथरनेट जैसे शब्द भी इस सूची में शामिल हैं.

भारत में रहने वाले आयुष अग्रवाल भी इस लिस्ट को सही मानते हैं. वह कहते हैं कि अभी भी कई ऐसे शब्द हैं जिनका मतलब पता नहीं चलता. कई शब्द बड़े अज़ीब हैं और उनके नाम का उस काम से कोई मतलब नहीं, जो वह डिवायस करते हैं. आयुष की ही बात इस सर्वे में सहयोग करने वाली संस्था प्लेन इंगलिश सोसायटी भी दोहराती है. यह सोसायटी तकनीकी शब्दों को आसान इंगलिश में बदलने की वकालत करती है. उसके हिसाब ये शब्द न केवल कन्फ्यूजिंग हैं बल्कि भाषा को बर्बाद भी कर रहे हैं. उनकी मांग है कि इन तकनीकों के विकास से जो कंपनियां जुड़ी हैं, वे आसान व रोजमर्रा के शब्दों का इस्तेमाल करें. दरअसल कई कंपनियां जानबूझ कर ऐसे शब्द चुनती हैं जो अलग हों और थोड़े भारी-भरकम लगें. अब वाई-फाई को ही लें. इसे हाई-फाई से मिलाकर रखा गया. वैसे वायरलेस फिडलेटी (वाई-फाई) का कोई मतलब नहीं है. इसे आसानी से वायरलेस नेटवर्क कहा जा सकता था जो कि असल में यह है भी. कई बार एक ही चीज का नाम कंपनियां अलग-अलग रखती हैं जो कन्फ्यूजन को और बढ़ाते हैं. अब मैक (एप्पल के एक कंप्यूटर) को किसी दूसरी डिवायस से जोड़ने वाले तार को फायरवायर कहते हैं. यही वायर सोनी में आईलिंक और टेक्सास इन्सट्रूमेंट्स में लिंक्स के नाम से जाना जाता है.

तकनीकी शब्दावली ने हमारी रोज़ाना की ज़िंदगी में तो ज़गह बना ली है, लेकिन इसके मतलब को समझना अधिकतर लोगों के लिए टेढ़ी खीर है. विशाल तो एक नई बात कहते हैं. उनका कहना है कि ऐसे शब्द जानबूझ कर इस्तेमाल किए जाते हैं, ताकि आम लोग उन्हें न समझ सकें. यह एक तरह का बाज़ारी खेल है जो इन शब्दों की आड़ में खेला जाता है. अगर आम आदमी इन शब्दों का मतलब समझने लगे तो वह इन तकनीकों को भी समझने लगेगा. ऐसे में उसे तकनीकी शब्दों में उलझा कर बेवकूफ बनाना मुश्किल होगा.

दूसरी ओर कुछ ऐसे भी हैं जो इन शब्दों को समझने और याद करने को कूल समझते हैं. राज कहते हैं कि ये शब्द बड़े मज़ेदार हैं और आसान भी. इन्हें बस ध्यान से समझने की ज़रूरत है. आने वाले दिनों में ये हमारी भाषा का ज़रूरी हिस्सा होंगे.

बात सही है. तकनीक के इस युग में इन शब्दों के बिना काम नहीं चल सकता. लेकिन एक बार रुक कर इस पर सोचने की भी ज़रूरत है कि क्या इन्हें और आसान नहीं बनाया जा सकता ? और अगर ऐसा हो सकता है तो इन्हें क्रैक करके सिंप्लिफाई करने और फिर हमारी वोकेबलरी की हार्डडिस्क में सेव करने की ज़रूरत है. साथ ही ज़रूरत हैं इन्हें आसान बनाकर आम बोलचाल में जगह देने की.

हंसाने वाला गिलास

ज़रा कल्पना कीजिए कि आपकी बर्थ डे पार्टी में पिछले पांच मिनट से आपकी कोई दोस्त आपको अपनी बातों से बोर कर रही है. ऐसे में आप उसके सामने पानी का गिलास रखते हैं और जब वह गिलास मुंह से लगाती है तो आप के साथ-साथ आपके बाकी दोस्त भी खिलखिलाकर हंस पड़ते हैं. आखिर क्यों? इसलिए कि आपकी दोस्त की मूंछें बन आई हैं. मज़ा आ गया न!

दरअसल यह कमाल है-पिक योर नोज पार्टी कप्स (ज़रा इसके नाम को दस बार जल्दी जल्दी बोल के देखिए) का. ये ऐसे मज़ेदार गिलास हैं जिन पर तरह तरह के नाक की तस्वीर बनी रहती है. जब भी कोई उस गिलास से कुछ पीता है तो ऐसा लगता है कि गिलास पर बनी नाक उसकी है. पीने वाले को इसका पता नहीं रहता कि उसकी नाक किस तरह दिख रही है. लेकिन जो सामने होता है. उसे देख कर मजा आ जाता है. अगर दोनों परिचित हैं. तब तो ठीक है. और अगर अपरिचित हैं तो ग़लतफहमी हो सकती है और बात झगड़े तक पहुंच सकती है. इसलिए यह खेल सिर्फ अपनों के बीच ही खेला जाए तो उचित रहेगा. इसका आनंद हर पीढ़ी के लोग उठा सकते हैं. बस, इतना ध्यान रखना होगा कि सब इस खेल को खेल की तरह ही ले. बहरहाल, 12 गिलास के सेट में छह लड़कों और छह लड़कियों के आकार की नाक बनी हुई है. इसे इंटरनेट के जरिए आसानी से मंगाया जा सकता है. 350 रुपए के इस सेट का इस्तेमाल कर आप अपनी पार्टी को और मज़ेदार बना सकते हैं. है न यह कमाल की चीज!

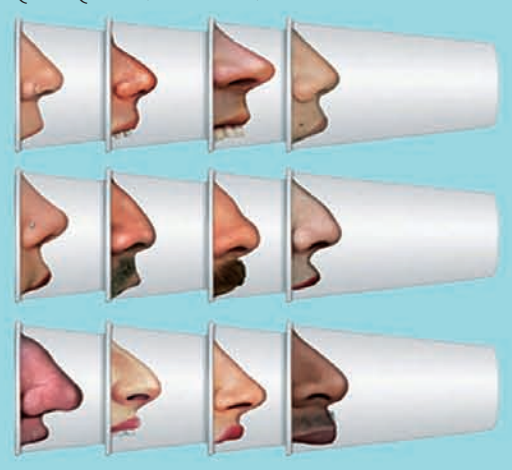

गेम दुनिया : गॉडफादर-2

गॉडफादर होने का सबसे पहला नियम है- कुछ भी बिज़नेस नहीं है, सब पर्सनल है. गॉडफादर-2 फिल्म को आए कई साल हो गए. लेकिन अभी भी कुछ नहीं बदला. सब पर्सनल है और जब सब कुछ पर्सनल हो तो उसको बचाने के लिए ख़ून-ख़राबा तो होगा ही. इसलिए गॉडफादर-2, गेम में भी ख़ून-ख़राबे की कमी नहीं. यह गॉडफादर सीरीज़ का यह सबसे ज़ोरदार गेम है. लड़ाइयों, गन-फाइट्स और गरजती बंदूकों के बीच अपनी क्राइम फैमिली बनाना और उसे बचाए रखना ही आपकी सबसे बड़ी चुनौती है.

गॉडफादर बनने की इस जंग में सब कुछ जायज़ है. हां, लड़कियों पर वार करने का आइडिया कुछ लोगों को अज़ीब भले लग सकता है. कई सालों के बाद इतना हिंसक गेम देखने को मिला है. लेकिन यह एक गेम ही तो है. हालांकि यही गेम की सबसे बड़ी खासियत भी है और कमज़ोरी भी. खासियत इसलिए कि मारधाड़ और कोल्ड-ब्लडेड एक्शन के शौकीनों को यह गेम बहुत पसंद आएगा. वहीं कमज़ोरी इसलिए कि आप यह गेम खेलने के बाद इसे भूल जाते हैं. यानी गेम आप पर कोई लंबा प्रभाव नहीं छोड़ता. गॉडफादर-2 एक बेहतरीन गेम है, भले ही गेमिंग हॉल ऑफ फेम में इसकी ज़गह न बने, लेकिन इसे जब आपको एक्शन और एड्रेनलिन की ज़रूरत महसूस हो तो इसे खेला जा सकता है.

झूम बराबर झूम

सोनी एरिक्सन अपना नया वाकमैन फोन भारतीय बाज़ार में लेकर आई है. वाकमैन सीरीज़ दरअसल सोनी की सबसे पॉपुलर फोन सीरीज़ है. इस की ख़ासियत मानी जाती है इसके बेहतरीन म्यूजिक फीचर्स और एक्सेसरीज़. एक यूजर के तौर पर आप इस सीरीज़ के सबसे नए अवतार-डब्ल्यू 705- से भी इसी की उम्मीद कर सकते हैं.

सोनी एरिक्सन डब्ल्यू 705 की डिज़ाइन की बात करें तो इस फोन को ख़ास तौर पर यूजर्स के मनोरंजन को ध्यान में रखकर बनाया गया है. युवाओं की पसंद का तो विशेष रूप से ध्यान रखा गया है.

इसमें क्वालिटी स्टीरियो और बास के बेहतरीन फीचर्स हैं और इसकी दमदार आवाज़ का आनंद उठाने के लिए प्रीमियम हेडसेट भी हैं. किसी अच्छे वाकमैन की तरह इसमें ट्रैक आईडी, सेन्स एमई, प्लेनाउ और म्यूजिक पहचानने की सुविधाएं मौजूद हैं.

साथ ही यह सोनी एरिक्सन के कई बेहतरीन फीचर्स को भी सपोर्ट करता है.

इन म्यूजिक फीचर्स के अलावा इसमें सबसे बढ़िया डिसप्ले, 3.2 मेगापिक्सल कैमरा, 120 एमबी (4 जीबी तक बढ़ाने लायक) की मेमोरी है. इसका डिजीटल लिविंग नेटवर्क अलायंस (डीएलएनए) आपको टीवी देखने की सुविधा भी देता है.

इस फोन में वाई-फाई और 3-जी सुविधा भी पहले से ही है. यानी कंपनी ने इसमें हर तरह के उपभोक्ता की सुविधा-असुविधा को ध्यान में रखा है. इसीलिए उपभोक्ता युवा हो या बुजुर्ग, अनुभव सबका एक समान ही रहेगा. इतने फीचर्स के बीच चलते-चलते आपको यह भी बता दें कि इस फोन में आम फोनों की तरह बात करने की सुविधा भी है.

चलता-फिरता प्रिंटर

अक्सर ऐसा होता है कि लोग आईपीएल जैसे फेवरिट मैच देखते हुए लैपटॉप पर कॉलेज का कोई असाइनमेंट भी तैयार कर रहे होते हैं. असाइनमेंट तैयार हो जाता है और जब प्रिंटआउट निकालने का वक्त आता है, तो उसके लिए आपको अपने लैपटॉप को दूसरे कमरे में रखे प्रिंटर से जोड़ना पड़ता है. और अगर इधर सचिन छक्के जड़ रहे हों, तो इसका मतलब हुआ कि आपको प्रिंटआउट के लिए इंतज़ार करना होगा.

लेकिन अब नहीं. जानी मानी कंप्यूटर कंपनी एपसन लेकर आई है अपना नया वाई-फाई प्रिंटर स्टाइलस फोटो टीएक्स-700 डब्ल्यू. इस ऑल इन वन प्रिंटर में बैठे-बैठे बटन दबाइए और प्रिंट आ जाएंगे. अगर चाहें तो प्रिंटर को उठाकर अपने साथ भी रख सकते हैं.

वाई-फाई के अलावा इसमें 10 सेकेंड में चार फोटो और डेढ़ सेकेंड में ए-4 पेपर प्रिंट कर सकते हैं. इसमें स्पेशल एप्सन क्लेरिया इंक का इस्तेमाल होता है, जिससे 5760×1440 डीपीआई जैसी बड़ी तस्वीर भी प्रिंट की जा सकती है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

DLF IPL

बिकने वाला है किंग ख़ान का केकेआर !

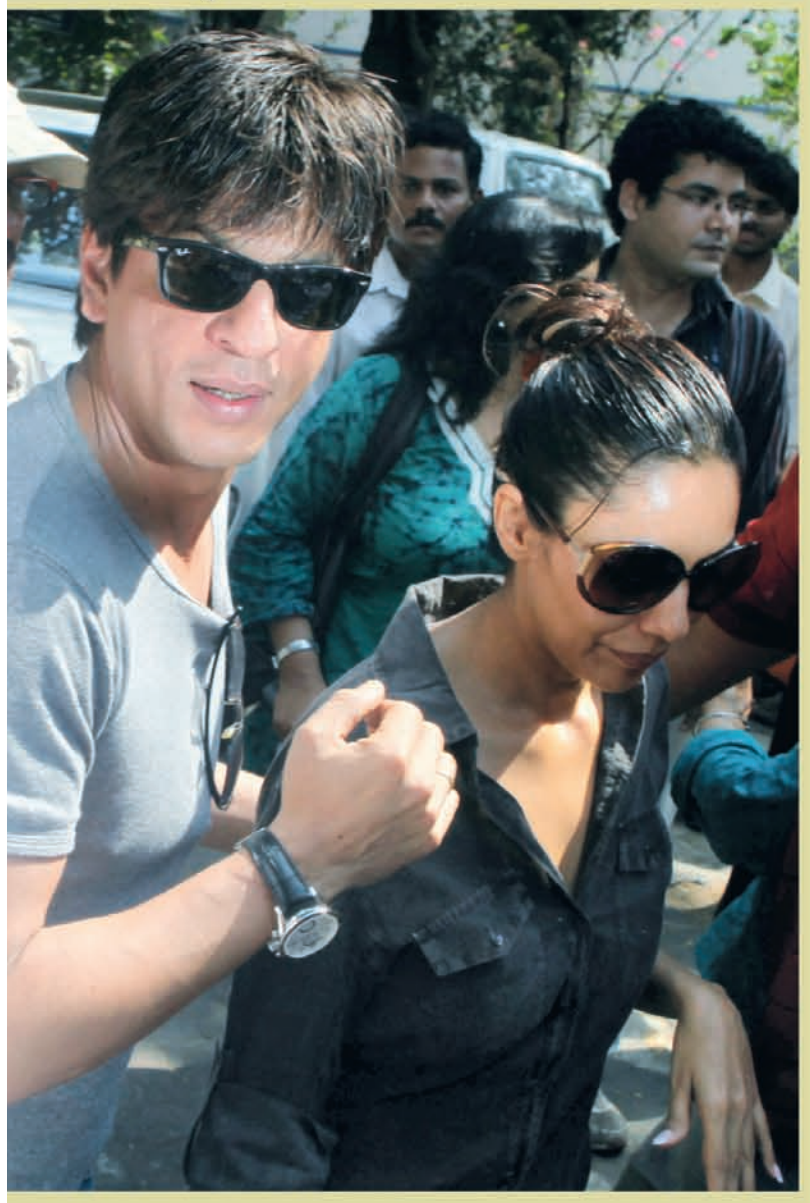

बाज़ीगर क्या बाज़ी हार गया है? क्या बादशाह अपना राजपाट बेचना चाहता है? क्या शाहरुख़ और क्रिकेट का हनीमून अब ख़त्म हो गया है? सूत्रों की मानें तो ऐसा ही लगता है. आईपीएल-2 में अपनी टीम कोलकाता नाइट राइडर्स (केकेआर) की लगातार हार से परेशान शाहरुख़ जब से दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे हैं. तब से उन्हें और उनकी टीम को लेकर अफवाहों का बाज़ार गर्म है. कहा जा रहा है कि बादशाह ख़ान के सब्र का बांध अब टूट चुका है. लगातार हार देखते-देखते वह ऊब चुके हैं. इसलिए अब वह इस टीम से पल्ला झाड़ने की तैयारी में हैं. शाहरुख़ जल्द ही कोलकाता नाइट राइडर्स को बेचने का फैसला करने वाले हैं.

सूत्रों के अनुसार, इसके लिए सहारा, नोकिया, अनिल अंबानी ग्रुप जैसे घरानों से उनकी बातचीत चल भी रही है. ख़बर है कि सहारा इस सौदे में सबसे ज़्यादा रुचि ले रहा है. ग़ौरतलब है कि शाहरुख़ ने यह टीम पिछले साल तीन सौ करोड़ में ख़रीदी थी. हालांकि शाहरुख़ और उनकी कंपनी-रेड चिलीज़ एंटरटेनमेंट-की ओर से कोई आधिकारिक टिप्पणी नहीं आई है, लेकिन अगर वह टीम को बेचने का फैसला करते हैं तो कोई हैरानी की बात नहीं होगी. दरअसल आईपीएल के दोनों संस्करणों में अपनी टीम के घटिया प्रदर्शन से शाहरुख़ बहुत आहत हैं. पहले आईपीएल में हार के बावजूद फायदे में रहने वाली कोलकाता नाइट राइडर्स की टीम को दूसरा संस्करण जिताने के लिए शाहरुख़ ने काफी मेहनत की है. उन्होंने टीम का कप्तान भी बदला और यह भी धमकी दी कि जब तक जीत नहीं मिलती वह साउथ अफ्रीका नहीं आएंगे. फिर भी टीम की हार का सिलसिला जारी है. ऐसे में लगता है कि उनका धैर्य अब जवाब दे चुका है. साउथ अफ्रीका से लौटते वक्त एयरपोर्ट पर उनका लटका हुआ चेहरा भी यही कह रहा था.

शाहरुख़ की समस्या सिर्फ हारती हुई टीम ही नहीं है. मंदी के समय में टीम का ख़र्चा उठाना भी मुश्किल होता जा रहा है. उन्हें हर साल 30 करोड़ रुपए लगाने थे, लेकिन पिछले साल उनका खर्च 75 करोड़ रहा था. हालांकि पिछले साल टीम ने 88 करोड़ कमाए भी, लेकिन इस बार फायदा कमाना मुश्किल लगता है.

उधर कोलकाता में मैच नहीं होने से टीम को उम्मीद के मुताबिक कमाई नहीं हो पा रही है. ऐसे में टीम बेचने से शाहरुख़ फायदे में ही रहेंगे. कहा जा रहा कि अगर टीम बिकी तो शाहरुख़ की झोली में 600 करोड़ आ सकते हैं, जो उनकी लगाई बोली का दोगुना होगी. अब टीम बिके या नहीं, पर शाहरुख़ और क्रिकेट के दीवाने यही मना रहे होंगे कि सिनेमा के किंग का कोलकाता के नाइट राइडर्स से यह दोस्ताना बना रहे. ताकि उन्हें एक टिकट पर ही सिल्वर स्क्रीन और क्रिकेट के मैदान, दोनों के सितारे दिखते रहें.

पावस नीर

बीसीसीआई की गुगली पर आईसीएल आउट

कहते हैं कि सुबह का भूला अगर शाम को वापस आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते. लेकिन भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (बीसीसीआई) से बग़ावत कर इंडियन क्रिकेट लीग (आईसीएल) से जुड़े खिलाड़ियों के लिए वापसी का रास्ता इतना आसान नहीं है. बीसी-सीआई ने भले ही इंडियन क्रिकेट लीग के खिलाड़ियों को फिर से अपने आधिकारिक आयोजनों में खेलने की अनुमति दे दी हो, लेकिन साथ में कई शर्तें भी रख दी हैं. इन खिलाड़ियों को 31 मई तक आईसीएल से सारे नाते तोड़ने होंगे. इसके बाद उन्हें एक साल के कूलिंग पीरियड से गुजरना होगा. इसके बाद ही ये खिलाड़ी वापसी कर पाएंगे. एक साल का यह प्रतिबंध ठीक वैसा ही है जैसा रंगभेद के दिनों में दक्षिण अफ्रीका जाने वाले खिलाड़ियों पर लगा था. वैसे इन तमाम शर्तों के बावजूद बीसी-सीआई के इस क़दम का स्वागत होना चाहिए. अब दूसरे क्रिकेट बोर्ड भी आईसीएल खिलाड़ियों को ऐसी छूट देनी की घोषणा जल्द कर सकते हैं. न्यूजीलैंड और बांग्लादेश के क्रिकेट बोर्ड तो पहले से ही इसकी मांग कर रहे थे. लेकिन अभी यह पता नहीं चल सका है कि आईसीएल के मुख्य कर्ता-धर्ता कपिलदेव का क्या होगा. बीसीसीआई का यह क़दम एकबारगी चौंकाने वाला ज़रूर लगता है, लेकिन इसकी ज़मीन काफी पहले से तैयार हो रही थी. दरअसल अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट काउंसिल (आईसीसी) पर उन देशों का दबाव बढ़ता जा रहा था, जिनके कई बड़े खिलाड़ी इस लीग का हिस्सा बने थे. उधर आईसीएल की याचिका पर अदालत में सुनवाई का वक्त नजदीक आता जा रहा था. आईसीसी और कोर्ट के दबाव से बचने के लिए बीसीसीआई ने बीच का रास्ता चुना. खिलाड़ियों की वापसी का रास्ता खोलकर उसने उन देशों को चुप करा दिया है जो अपने खिलाड़ियों की वापसी के लिए बेचैन थे. बीसीसीआई ने इस तरह एक तीर से दो शिकार किए हैं. एक तो उसने आईसीएल की जड़ें काट दी हैं, दूसरे उसने आधिकारिक और अनाधिकारिक लीग के विवाद को भी ठंडा कर दिया है. आईसीसी को डर था कि अगर आईपीएल और आईसीएल का मामला लंबा चला तो बाकी देशों में भी बाग़ी लीग सामने आ सकती हैं. अमेरिकी प्रीमियर लीग की घोषणा भी बीसीसीआई के फैसले की वजह बनी. इसलिए बीसीसीआई 2011 के विश्व कप से पहले इस विवाद को हर हाल में शांत कर देना चाहती थी.

बहरहाल, बीसीसीआई का यह क़दम उन बाग़ी खिलाड़ियों के लिए राहत लेकर आया है जो आईसीएल में जाकर ख़ुद को फंसा हुआ महसूस कर रहे थे. फ्लॉप हो चुके आईसीएल में जाने के बाद न तो वह बड़ी कमाई कर पा रहे थे, न ही देश की ओर से खेलने का मौका मिलने वाला था. इस कदम से उन्हें दूसरी पारी की उम्मीद मिली है. साथ ही कई देशों की राष्ट्रीय टीमों की भी उम्मीद जगी है. उनके कई महत्वपूर्ण खिलाड़ी अब वापस आ सकते हैं.

बीसीसीआई के इस कदम का सबसे बड़ा फायदा न्यूज़ीलैंड और बांग्लादेश की टीम को होने वाला है. उन्हें अपने कई महत्वपूर्ण खिलाड़ी वापस मिल सकते हैं. शेन बांड और डेरेल टफी जैसे खिलाड़ियों के आ जाने से न्यूजीलैंड की तेज गेंदबाज़ी में धार लौट सकती है. इसी तरह बांग्लादेश की लगभग आधी और अच्छी टीम फिर से देश के लिए खेल सकेगी. इन दोनों देशों के क्रिकेट बोर्ड तो अपने खिलाड़ियों को कूलिंग पीरियड से भी राहत दे सकते हैं.

उधर आईपीएल-आईसीएल विवाद में सबसे ज़्यादा परेशान रहे पाकिस्तान की भी कई मुश्किलें हल होती दिख रही हैं. पाकिस्तानी बोर्ड इस बात पर दुविधा में था कि आईसीएल में जा चुके खिलाड़ियों को टीम में जगह दी जाए या नहीं. एक तरफ आईसीसी (पढ़ें बीसीसीआई) का दबाव था तो दूसरी तरफ ख़राब प्रदर्शन कर रही टीम को ज़िंदा करने की मजबूरी. अब मोहम्मद युसूफ और नावेद जैसे खिलाड़ी उसके पास उपलब्ध होंगे. श्रीलंका को भी इस घोषणा से राहत मिली है.

उधर पहले से बर्बादी की कग़ार पर खड़ी आईसीएल के लिए यह आख़िरी धक्का साबित हो सकता है. उससे जुड़े लोग भी शायद किसी बेलआउट प्लान की उम्मीद कर रहे होंगे. इस फैसले के पीछे की रणनीतियां, मजबूरियां और उम्मीदें जो भी रही हों, क्रिकेट के लिए यह अच्छा ही है. अगर कूलिंग पीरियड के नियम में थोड़ी ढील मिल जाए तो दर्शक शेन बांड और युसूफ जैसे खिलाड़ियों को ट्वेंटी-20 विश्व कप में देख सकते हैं. वैसे यह कहानी अभी ख़त्म नहीं मानी जानी चाहिए, क्योंकि इससे बीसीसीआई जुड़ा हुआ है.

pawas.chauthiduniya@gmail.com

विश्व कप की टीम से मुनाफ बाहर, आर पी अंदर

उम्मीद के मुताबिक ही ट्वेंटी-20 विश्व कप के लिए चुनी गई भारतीय टीम में कोई बड़ा बदलाव नहीं किया गया. वैसे ख़िताब बचाने के लिए महेंद्र सिंह धोनी के नेतृत्व में इंग्लैंड जाने वाली इस टीम के चयन पर आईपीएल-2 का प्रभाव साफ नज़र आता है. आईपीएल में डेक्कन चार्जर्स के लिए बेहतरीन प्रदर्शन कर रहे गेंदबाज रूद्र प्रताप (आरपी) सिंह की टीम में वापसी हुई है. आरपी सिंह ने आईपीएल में अब तक यानी शुरू के छह मैचों में 12 विकेट झटके हैं. वहीं मुंबई इंडियंस के लिए अच्छा खेल रहे युवा आलराउंडर अभिषेक नायर टीम में जगह बनाने से चूक गए.

वैसे दक्षिण अफ्रीका में चल रहे आईपीएल में बेहतरीन प्रदर्शन कर रहे सचिन को टीम में शामिल होने के लिए मनाने की बात चली थी. लेकिन मास्टर ब्लास्टर ने पहले ही कह दिया कि आईपीएल के अलावा ट्वेंटी-20 के अन्य किसी मैच में खेलने का उनका इरादा नहीं है.

बहरहाल, न्यूजीलैंड दौरे पर गए मुनाफ पटेल और दिनेश कार्तिक इस बार टीम में नहीं होंगे. मुनाफ का हालिया प्रदर्शन कुछ ख़ास नहीं रहा है. उनके बाहर रहने का मतलब यह भी है कि कप्तान धोनी को मनपसंद गेंदबाज़ी आक्रमण मिला है. ग़ौरतलब है कि धोनी न्यूजीलैंड दौरे पर भी मुनाफ की जगह आरपी सिंह को ले जाना चाहते थे. दिनेश कार्तिक का आईपीएल में कुछ अच्छा प्रदर्शन नहीं चल रहा है और न्यूजीलैंड में भी वह कोई कमाल नहीं दिखा सके थे. वैसे भी धोनी के रहते दूसरे विकेटकीपर की ज़रूरत टीम को थी भी नहीं. इसलिए भी कि न्यूजीलैंड के विपरीय यह दौरा सिर्फ ट्वेंटी-20 विश्व कप के लिए है.

विश्व कप के लिए टीम इस तरह है : एमएस धोनी (कप्तान), सहवाग, गंभीर, रैना, युवराज, युसूफ पठान, रोहित शर्मा, हरभजन, ज़हीर, ईशांत, प्रवीण कुमार, आरपी सिंह, रवींद्र जडेजा, प्रज्ञान ओझा और इरफान पठान.

फिर विदेशी कोच

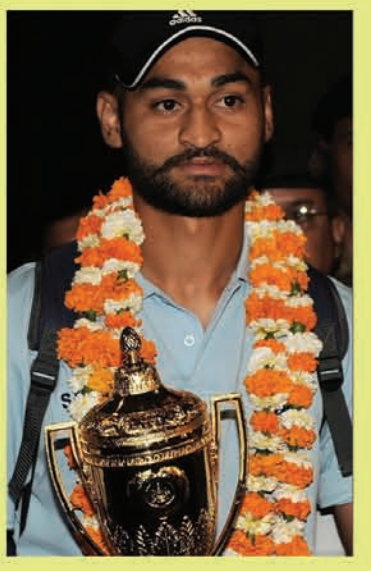

पता नहीं ऐसा क्यों है कि भारतीय हॉकी टीम जब भी अच्छा प्रदर्शन करने लगती है, तो अधिकारी भारतीयों को इसका श्रेय देने के बजाय विदेशी कोच की तलाश में जुट जाते हैं. हाल में ही कोच हरेंद्र सिंह के साथ अजलान शाह कप जीत कर आई हॉकी टीम के लिए जोस ब्रासा नाम के नए स्पेनिश कोच की नियुक्ति कर दी गई है.

कप्तान संदीप सिंह अधिकारियों का शुक्रिया अदा करें कि उन्हें आगे भी बनाए रखा गया है. स्पेनिश सुपर कोच जोस ब्रासा नौ से 16 मई तक मलेशिया में होने वाले एशिया कप में भारत के कोच की जिम्मेदारी संभाल लेंगे. हरेंद्र सिंह को अभी कोच बनाए रखा गया है, लेकिन उनकी भूमिका ब्रासा के सहायक की ही होगी. हरेंद्र सिंह ने एक बयान जारी कर ब्रासा की नियुक्ति का स्वागत किया है.

हालांकि विदेशी कोच के साथ भारतीय टीम का यह पहला प्रयोग नहीं है. आस्ट्रेलियाई रिक चार्ल्सवर्थ के साथ भारतीय हॉकी टीम और उसके अधिकारियों का जैसा अनुभव रहा, उसे शायद ही कोई याद रखना चाहे. बेचारे चार्ल्सवर्थ बकाया भुगतान को लेकर आज तक धक्के खा रहे हैं. अब यह देखना कम दिलचस्प नहीं होगा कि जोस ब्रासा के लिए भारतीय हॉकी स्पेनिश टैंगो साबित होती है या बुल फाइट.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

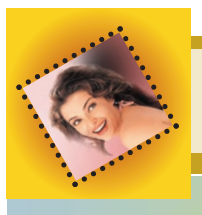

सलमान की सीख

बिगड़ैल और गुस्सैल स्टार वाली अपनी छवि से सलमान ख़ान खुद परेशान हैं. इससे भी अधिक वह इस बात से परेशान हैं कि जब-जब जनता के बीच छवि कुछ ठीक होने लगती है, तभी कोई न कोई हादसा हो जाता है. पिछले दिनों विभिन्न टीवी चैनलों पर प्रकट होकर उन्होंने अपनी छवि काफी हद तक अच्छे बच्चे वाली बना ली थी, लेकिन तभी कैटरीना की बर्थ-डे पार्टी में शाहरुख़ से भिड़ंत हो जाने की ख़बर बाहर आ गई. संबंधों की तो न जाने कितनी कहानियां हमेशा चलती ही रहती हैं. और इन तमाम कहानियों को कैटरीना से जोड़ कर उसका निष्कर्ष भी बता दिया जाता है कि दोनों में अलगाव हो गया है. बाद में पता चलता है कि सल्लू मियां और कैटरीना के संबंध पहले की तरह ही मधुर हैं. अभी हाल में सलमान के साथ नई अभिनेत्री आसिन का नाम जोड़ा जा रहा है. इतना ही नहीं, यह भी कहा गया कि सलमान ने *गजनी* वाली आसिन को मुंबई में एक फ्लैट ख़रीद कर दिया है. ऐसी चर्चाओं से सलमान को तो परेशानी नहीं हुई, लेकिन आसिन काफी दुखी चल रही हैं. बहरहाल, उन कड़वे अनुभवों को पीछे छोड़ते हुए सल्लू मियां ने छवि सुधारने की इधर एक बार गंभीर कोशिश की है. एक सच्चे और बेहतर इंसान होते हुए भी उलटी किस्म की बनी अपनी पहचान को मिटाने के लिए वह जल्द ही लोगों को इंसानियत का पाठ पढ़ाते नज़र आएंगे. सलमान एक ऐसा विज्ञापन शूट करने जा रहे हैं, जिसका मकसद *हिट एंड रन* जैसे मामलों के दोषी लोगों में ज़िम्मेदारी का अहसास जगाना है. बात यहीं तक नहीं है, इस विज्ञापन में सलमान ने एक ऐसी टी-शर्ट पहनी है जिस पर लिखा हुआ है-बीइंग ह्यूमन. जिम्मेदारी का यह पाठ वह सलमान सिखा रहे है, जिन्हें खुद 2002 में ऐसे ही एक *हिट एंड रन* केस में जेल की हवा खानी पड़ी थी. अदालत में यह मामला अभी चल ही रहा है. नतीजा क्या निकलेगा, यह कहा नहीं जा सकता.

छोटे पर्दे पर अब ऐश भी

छोटे पर्दे पर बड़े स्टारों के आने की जो परंपरा अमिताभ बच्चन ने चलाई थी, वह अब काफी फल-फूल रही है. इस कड़ी में नया नाम है-ऐश्वर्या राय बच्चन का. जी हां, बच्चन परिवार की बहू ऐश्वर्या भी छोटे पर्दे पर अपनी नई पारी शुरू करने की तैयारी में जुटी हुई हैं. वह एक टीवी चैनल पर जल्द ही शुरू होने वाले टैलेंट हंट प्रोग्राम में नज़र आएंगी. बताया जा रहा है कि यह प्रोग्राम दरअसल एक अमेरिकी शो का हिंदी अवतार होगा. इस शो में ऐश्वर्या क्या करने वाली हैं, इस का अभी पूरा खुलासा नहीं हो पाया है. लेकिन बताया जा रहा है कि वह इस शो को लेकर बहुत उत्साहित हैं और बड़े पर्दे के बाद छोटे पर्दे पर भी तहलका मचाना चाहती हैं. वैसे इस शो के लिए प्रायोजकों ने पहले प्रीति जिंटा से बात की थी. प्रीति इस में काम करने को तैयार भी हो गई थीं. यहां तक कि प्रीति को इस शो के लिए पांच करोड़ रुपए बतौर एंडवास दे भी दिए गए थे, लेकिन ऐन समय पर उन्होंने आईपीएल की वजह से यह शो करने से इंकार कर दिया. इस तरह यह शो अचानक ऐश्वर्या राय बच्चन की गोद में आ गया. लेकिन यहां यह हैरान करने वाली बात है कि जो ऐश्वर्या किसी दूसरी अभिनेत्री की ठुकराई भूमिकाओं को करने से साफ इंकार कर देती थीं, वह इसके लिए किस तरह राजी हो गईं.

ये कहां आ गए संजू बाबा

जादू की झप्पी देने वाले मुन्ना भाई को ही आज इसकी सबसे अधिक जरूरत है. एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन नावों में पैर रखने से वह कहीं के नहीं रह गए हैं. राजनीति में पहला ही कदम ग़लत पड़ गया, तो घरेलू मोर्चे पर सब कुछ सही नहीं चल रहा. इन दो मोर्चों के बीच उलझ कर रह गए संजू बाबा की फिल्में भी अटकने लगी हैं. यही कारण है कि उनके प्रशंसक और शुभचिंतक पूछने लगे हैं-ये कहां आ गए संजू बाबा. पिता सुनील दत्त की राजनीतिक विरासत को आगे बढ़ाने की नीयत से जब उन्होंने लोकसभा का चुनाव लड़ना चाहा तो सुप्रीम कोर्ट आड़े आ गया. अदालत ने लखनऊ से समाजवादी पार्टी के टिकट पर लोकसभा चुनाव लड़ने की अनुमति उन्हें नहीं दी. इसका फायदा उनकी पार्टी ने जमकर उठाया और उन्हें एक भीड़ खींचने वाले नेता में तब्दील कर दिया. इससे हुआ यह कि वह घर-परिवार और फिल्म इंडस्ट्री से दूर होकर चुनाव क्षेत्रों में सक्रिय हो गए. सपा का दामन थामने से हर सुख-दुख में साथ देने वाली बहनें-प्रिया और नम्रता-से संबंध ख़राब हो गए. घोषणा के मुताबिक जब सपा ने संजय दत्त की जगह मान्यता को लखनऊ से टिकट नहीं दिया तो वह मुंबई लौट गईं. इन तमाम घटनाक्रमों से अमेरिका में रह रही संजू बाबा की 21 वर्षीया बेटी-त्रिशाला-आहत बताई जा रही हैं. वैसे पत्नी मान्यता ने यह बयान देकर स्थिति को सुधारने की कोशिश करती नज़र आईं कि वह त्रिशाला को अपने घर लाना चाहती हैं. उससे उनका रिश्ता सौतेली मां वाला नहीं, बल्कि सहेलियों जैसा रहेगा. लेकिन त्रिशाला ने जल्दी ही जवाब देकर उनका भी खेल बिगाड़ दिया. त्रिशाला ने कह दिया कि उसे किसी की कोई परवाह नहीं है, सब अपनी मर्ज़ी के मालिक हैं. इसलिए जिसे जो मर्ज़ी हो, वह करे. यानी संजय दत्त इन दिनों कई समस्याओं में एक साथ उलझ गए हैं. लेकिन उनके प्रशंसक घबराएं नहीं, वह बहुत जल्द लाइट, साउंड, एक्शन की अपनी मूल दुनिया में लौटने वाले हैं. बॉलीवुड में अपने अधूरे कामों को पूरा करने के लिए उनकी वापसी सुनिश्चित हो गई है. उनके लौटने से निर्माताओं के चेहरे पर हंसी लौट आई है. इंडस्ट्री में संजय अकेले ऐसे एक्टर हैं जिनके पास इस समय सबसे ज़्यादा फिल्में है. उन्हें जल्दी ही अनिल कपूर की फिल्म-नो प्रोब्लम-की शूटिंग करनी है. यह कॉमेडी फिल्म है. इस साल संजय की सबसे पहले रिलीज़ होने वाली फिल्म होगी-कल किसने देखा है. एक फिल्म में उन्होंने गाना भी गाया है.

तरस आता है सोनम की समझदारी पर

सांवरिया से कैरियर शुरू करने वाली सोनम कपूर के बारे में कहा जा रहा है कि वह समझदार हो गई हैं और अब अक्लमंदी की बात करने लगी हैं. एक फ्लाप फिल्म से इंडस्ट्री में कदम रखने वाली सोनम वैसे अपनी दूसरी फिल्म-*दिल्ली 6*-से थोड़ी खुश जरूर हैं, पर इतनी नहीं कि आगे के सफर को लेकर निश्चिंत हो जाएं. एक से एक नवोदित कलाकारों के बीच अपनी जगह बनाना अब किसी के लिए भी आसान नहीं रह गया है. स्टार पुत्रों और पुत्रियों के लिए भी नहीं. लिहाजा अनिल कपूर की पुत्री सोनम एक्टिंग के कुछ और गुर सीखना चाहती हैं. इसके लिए वह न्यूयार्क जाना चाहती हैं. वहां वह यह भी सीखेंगी कि ग्लैमरस रोल में जान किस तरह डाली जाती है. वह खुद को सिर्फ नृत्य और गीत वाले दृश्यों तक ही सीमित नहीं रखना चाहती. अब वह अधिकतर गंभीर भूमिकाएं ही करना चाहती हैं. लेकिन जिन भूमिकाओं को वह अपने लिए चुनौतीपूर्ण मान रही हैं, उनसे उनके भविष्य को लेकर चिंता और गहरी हो जाती है. उन्हें फिल्म *नो एंट्री* में लारा दत्ता और *दोस्ताना* में प्रियंका चोपड़ा वाली भूमिकाएं चुनौतीपूर्ण लगी हैं. अब सोनम को यह कौन समझाए कि किसी फिल्म के चल जाने से कोई रोल चुनौतीपूर्ण नहीं हो जाता.

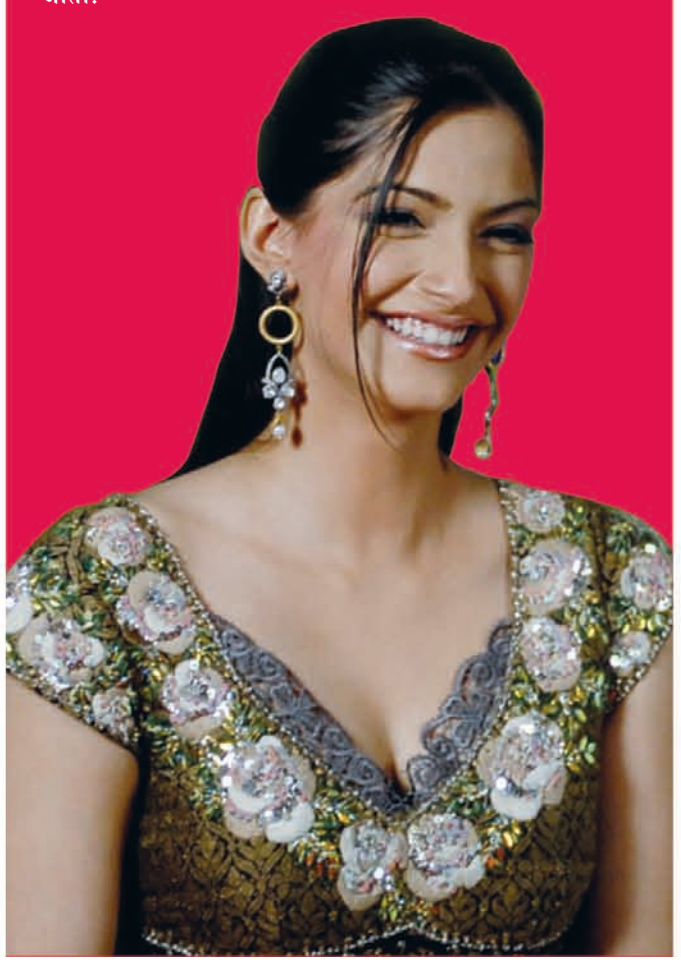

अभिषेक के साथ काम नहीं करेंगे अमिताभ

आज की तारीख़ में बॉलीवुड का सबसे बड़ा घराना इन दिनों कुछ अलग कारणों से ख़बरों में है. बताया जा रहा है कि अमिताभ बच्चन अब पुत्र अभिषेक के साथ फिल्म नहीं करना चाहते. यह बात तब सामने आई, जब निर्देशक सुजॉय घोष अपनी अगली फिल्म-*अलादीन एंड द मिस्ट्री ऑफ द लैंप*-के लिए बिग-बी के पास पहुंचे. कहानी से लेकर ट्रीटमेंट तक उन्हें पसंद आ गई, पर जब साथी कलकारों की बात चली तो मामला फंस गया. बिग-बी ने फिल्म करने के लिए जो शर्त रखी, वह काफी चौंकाऊ थी. कहा कि वह अभिषेक के साथ काम नहीं करेंगे. इसलिए कि दोनों ने एक साथ कई फिल्में कर ली हैं. अब और नहीं करेंगे. सुजॉय ने अभिषेक के साथ एक और फिल्म कर लेने का काफी आग्रह किया, पर उन्होंने दो-टूक कह दिया-अलादीन के रूप में अभिषेक के बजाए किसी नए अभिनेता को साइन करें. अंत में निर्देशक ने उनकी बात को तरजीह दी और अभिषेक बच्चन वाले किरदार के लिए रितेश देशमुख को ले लिया है. इस तरह अलादीन की भूमिका जहां रितेश करेंगे, वहीं अमिताभ चिराग से निकलने वाला जिन्न बनेंगे. वैसे इस फिल्म की एक ख़ास बात मिस श्रीलंका रह चुकी जैकलीन फर्नांडीस भी होंगी. वह इसी फिल्म से बॉलीवुड में प्रवेश करने वाली हैं.

शिल्पा के सितारे

कमनीय काया की मल्लिका शिल्पा शेट्टी के लिए विदेशी धरती हमेशा से शुभ रही है. हिंदी फिल्मों में जब उनका कैरियर सबने ख़त्म मान लिया था, तब *बिग ब्रदर* ने उन्हें लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचा दिया. जिस समय अक्षय कुमार तक ने शिल्पा से रिश्ते तोड़ लिए थे, उस समय उस प्रोग्राम ने उन्हें राज कुंद्रा से मिला दिया. जैसा कि सब जानते हैं कि शिल्पा जल्द ही उनसे शादी भी करने वाली हैं. आजकल वह राज के साथ दक्षिण अफ्रीका में आईपीएल-2 में अपनी टीम राजस्थान रॉयल्स का उत्साह बढ़ाने में लगी हुई हैं. लेकिन अबकी विदेशी धरती उन्हें कुछ रास नहीं आ रही. सितारे हैं कि साथ ही नहीं दे रहे. एक तो पिछले साल चैंपियन रही उनकी टीम का प्रदर्शन इस बार कुछ ख़ास नहीं चल रहा. दूसरे, मन बहलाने के लिए जब अपनी टीम के धुरंधर क्रिकेटरों-ग्रीम स्मिथ और शेन वार्न-के साथ मैदान में उतरीं, तो उनसे बल्ला उठाया ही नहीं जा रहा था. शिल्पा को स्मिथ ने बल्लेबाजी सिखानी चाही, तो वार्न ने स्पिन गेंदबाजी. आख़िर में उन्हें कहना पड़ा कि इससे आसान तो फिल्में करना है. ठीक कहा आपने. इससे खिलाड़ियों का ध्यान भी भंग नहीं होता. वैसे बता दें कि शिल्पा यह सब इसलिए कर रही थीं कि उन्हें क्रिकेट पर फिल्म बनानी है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com